* ॐ नमः शङ्कराय *

❀ घेरण्डसंहिता

भाषानुवादसहित ।

प्रथमोपदेशः

एकदा चण्डकापालिर्गत्वा घेरण्डकुट्टिमम् ।
प्रणम्य विनयाद्भक्त्या घेरण्डं परिपृच्छति ॥ १ ॥

एक समय चण्डकापालि नामक (योगको सीखना चाहने वाले) पुरुष घेरण्ड ऋषिकी कुटी पर गए और उनको विनयपूर्वक भक्तिसहित प्रणाम करके पूछनेलगे ॥ १ ॥

घटस्थयोगं योगेश तत्त्वज्ञानस्य कारणम् ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि योगेश्वर वद प्रभो ॥ २ ॥

कि–हे योगेश ! तत्त्वज्ञानका कारण घटस्थ * (शरीरस्थ) योग है, हे प्रभो ! इस समय मैं उसको सुनना चाहता हूँ ॥२॥

घेरण्ड उवाच ।

साधु साधु महाबाहो यस्मात्त्वं परिपृच्छसि ।
कथयामि च ते वत्स सावधानोऽवधारय ॥३॥

घेरण्ड ऋषि बोले कि–हे महाभुज ! तुमने जो प्रश्न किया, उसके लिये मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ, हे वत्स ! तुम जिस बात

---

* योगकी दूसरी संहिताओंमें लिखा है, कि–"प्राणापाननादबिन्दुजीवात्मपरमात्मनः । मिलित्वा घटते यस्मात्तस्माद्वै घट उच्यते ।" अर्थात्–प्राण अपान नादबिन्दु, जीवात्मा और परमात्माके मिलनेसे घटता है (बनता है) इसलिये यह शरीर घट कहलाता है ।

को सुनना चाहते हो, उसको मैं कहता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो ॥ ३ ॥

नास्ति मायासमं पापं नास्ति योगात्परं बलम्।
नास्ति ज्ञानात्परो बन्धुर्नाहङ्कारात्परो रिपुः ॥ ४ ॥

जैसे मायाकी समान कोई बन्धन (पाप) नहीं है, ज्ञानकी समान कोई बन्धु नहीं है और अहङ्कारकी समान कोई शत्रु नहीं है, ऐसे ही योगकी समान दूसरा कोई (बडा भारी) बल नहीं है ॥ ४ ॥

अभ्यासात् कादिवर्णानि यथाशास्त्राणि बोधयेत्।
तथा योगं समासाद्य तत्त्वज्ञानञ्च लभ्यते ॥ ५ ॥

जैसे ककार आदि वर्णोंका अभ्यास करनेसे क्रमसे सकल शास्त्रोंका बोध होजाता है, तैसे ही योगशास्त्रका अभ्यास करते करते तत्त्वज्ञान होजाता है ॥ ५ ॥

सुकृतैर्दुष्कृतैः कार्यैर्जायते प्राणिनां घटः।
घटादुत्पद्यते कर्म घटीयन्त्रं यथा भ्रमेत् ॥ ६ ॥
ऊर्ध्वाधो भ्रमते यद्वत् घटीयन्त्रं गवां वशात्।
तद्वत्कर्मवशाज्जीवो भ्रमते जन्ममृत्युभिः ॥ ७ ॥

जीवोंका यह शरीर पुण्य और पापभोगके लिये ही उत्पन्न हुआ है, जो (देहधारी) सत्क्रियाका अनुष्ठान करते हैं, वे पुण्य और जो असत्क्रियाका अनुष्ठान करते हैं, वे पाप भोगते हैं, जिसप्रकार कर्मोंका अनुष्ठान कियाजाता है, इस देहमें उसीप्रकार का फल मिलता है, घडीका यन्त्र (सूई) निरन्तर ऊपर और नीचे घूमता रहता है, प्राणी भी इसीप्रकार अपने २ कर्मवश बारम्बार उत्पत्ति लय, पाप और पुण्य आदिका अनुगामी हो कर्मफल भोगता रहता है ॥ ६-७ ॥

आमकुम्भमिवाम्भस्थो जीर्यमाणः सदा घटः ।
योगानलेन संदह्य घटशुद्धिं समाचरेत् ॥ ८ ॥

जीवका शरीर कच्चे घड़ेकी समान है, जीवन जलकी समान है और योग अग्निकी समान है । कच्चे घड़ेमें जल भरकर रखनेसे वह घड़ा क्रमशः गलकर लयको प्राप्त होजायगा, और अग्नियोगसे दग्ध करलेने पर वह घड़ा स्थायी (पक्का) होजायगा, ऐसे ही सजीव देह भी सदा जीर्ण और लयको प्राप्त होता रहता है अतः इसको योगाभ्यासरूपी अग्निसे विशुद्ध (पक्का) करना उचित है ॥८॥

अथ सप्तसाधनम् ।

शोधनं दृढता चैव स्थैर्यं धैर्यं च लाघवम् ।
प्रत्यक्षं निर्लिप्तञ्च घटस्थं सप्तसाधनम् ॥ ९ ॥

योगाभ्यास करनेकी वासना होने पर सबसे पहिले सात प्रकारके साधनोंके द्वारा शरीरको विशुद्ध करना पड़ेगा । शोधन, दृढता, स्थैर्य, धैर्य, लाघव, प्रत्यक्ष और निर्लिप्त ये सात शरीर के सप्तसाधन कहलाते हैं ॥ ९ ॥

सप्तसाधनलक्षणम् ।

षट्कर्मणा शोधनञ्च आसनेन भवेद् दृढम् ।
मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता ॥ १० ॥
प्राणायामाल्लाघवं च ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनि ।
समाधिना च निर्लिप्तं मुक्तिरेव न संशयः ॥ ११ ॥

छः कर्मोंसे शोधन आसनोंसे, दृढता, मुद्राओंसे स्थैर्य (स्थिरता) प्रत्याहारसे धैर्य, प्राणायामसे लाघव, ध्यानसे अपने आत्मामें ध्येय पदार्थका दर्शन, एवं समाधिद्वारा निर्लिप्तता (वासनाशून्यता) होती है, इसप्रकार अभ्यास करते २ अन्तमें निश्चय ही मोक्ष होजाता है * ॥ १० । ११ ॥

* आदियामलमें लिखा है कि-यम, नियम, आसन, प्राणायाम,

षट्कर्माणि ।

धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिर्लौलिकी त्राटकं तथा ।
कपालभातिश्चैतानि षट् कर्माणि समाचरेत् ॥ १२ ॥

संयम, प्रत्याहार, धारणा और समाधि यह आठ योगके अंग हैं अर्थात् योग सीखने समय इन आठोंका साधन करना उचित है ।

दत्तात्रेय-संहितामें लिखा है, कि-

यमश्च नियमश्चैव आसनं च ततः परम् ।
प्राणायामश्चतुर्थः स्यात् प्रत्याहारश्च पञ्चमः ॥
षष्ठी तु धारणा प्रोक्ता ध्यानं सप्तममुच्यते ।
समाधिरष्टमः प्रोक्तः सर्वपुण्यफलप्रदः ।
एवमष्टांगयोगं च याज्ञवल्क्यादयो विदुः ॥

अर्थात्-यम, नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि इन आठोंको याज्ञवल्क्य आदि योगी योग के आठ अङ्ग बतलाते हैं, ये योग समस्त पुण्यफल देनेवाला है ।

निरुत्तर-तन्त्रमें लिखा है, कि-

आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा ।
ध्यान समाधिरेतानि योगाङ्गानि वदन्ति षट् ॥

अर्थात्-आसन, प्राणसंरोध, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योगके छः अंग कहलाते हैं ।

आदियामलमें लिखा है, कि-

ध्यानं तु द्विविधं प्रोक्तं स्थूलसूक्ष्मविवेकतः ।
स्थूलं मन्त्रमयं विद्धि सूक्ष्मं तु मन्त्रवर्जितम् ॥

अर्थात्-ध्यान दो प्रकारका है, स्थूल और सूक्ष्म, मन्त्रमय ध्यानको स्थूल और मन्त्ररहित ध्यानको सूक्ष्मध्यान कहते हैं ।

निरुत्तरतन्त्रमें लिखा है, कि-

"प्राणायामद्विषट्केन प्रत्याहारः प्रकीर्तितः ।
प्रत्याहारद्विषट्केन जायते धारणा शुभा ॥
धारणाद्वादशप्रोक्तं ध्यानं ध्यानविशारदैः ।
ध्यानद्वादशकैरेव समाधिरभिधीयते ॥
यत्समाधौ परं ज्योतिरन्तरं विश्वतोमुखम् ।"

अर्थात्-बारह प्राणायामसे प्रत्याहार होता है, बारह प्रत्या-

इन छः कर्मोंसे शोधन होता है-धौति, वस्ति, नेति, लौलिकी,

हारोंकी एक धारणा, बारह धारणाओंका एक ध्यान और बारह ध्यानोंकी एक समाधि होती है, समाधिको साधना पूर्ण होने पर हृदयके मध्यमें विश्वव्यापी परम ज्योति उदित होजाती है ।

आदियामलमें लिखा है, कि-

प्राणायामस्त्रिधा चेति चतुधा प्रथमं शृणु ।
आसने प्राणसंयमे न शक्ता सुकुमारकाः ॥
महापुण्यप्रभावेन शक्यते तु महात्मनाम् ।
इडां शशिप्रभां ध्यात्वा मन्देन्दुना तु पूरयेत् ।
पूरयित्वा दृढं धृत्वा यथाशक्ति तु कुम्भयेत्
महाज्योतिर्मयो भूत्वा वायुपूर्णकलेवरः ।
शक्तिवासं तु संत्राय रेचयेद् वायुमर्हितः ॥
पिङ्गलामर्कवर्णां तु त्यजेद्बुध्वा शनैः शनैः ।
अयं पतङ्गः काष्ठाग्निप्रत्याशेन पुनः पुनः ॥

अर्थात्-प्राणायाम तीन प्रकारका है, आसन नानाप्रकारके हैं, सुकुमार मनुष्योंसे उनका साधन नहीं होसकता जो व्यक्ति महात्मा और पुण्यवान् हैं, वे ही उनका साधन करसकते हैं, प्राणायाम करते समय नासिकाके वाम रंध्रमें धीरे २ वायु भर ले, फिर उस वायुको दृढ रूपसे धारण कर शक्तिके अनुसार कुम्भक करे फिर नासिकाके दाहिने नथनेसे वायुका रेचन करे । इसप्रकार कुम्भक करने पर देह ज्योतिविशिष्ट और वायुद्वारा परिपूर्ण रहता है ।

और भी लिखा है, कि-

"शान्तिः सन्तोष आहारनिद्राल्पं मनसो दमः । शून्यान्तःकरणं चेति यमा इति प्रकीर्तिताः ॥ दूरे त्यक्त्वा तु चापल्यं मनःस्थैर्यं विधाय च । एकान्तमेलनं नित्यं प्राणमात्रेण सा मतिः । सदोदासीनभावस्तु सर्वत्रेच्छाविवर्जनम् ॥ यथालाभेन संतुष्टः परमेश्वरमानसः । मानदानपरित्याग एतत्तु नियमा इति ॥ आसनानि च तावन्ति यावन्तो जीवजन्तवः । कृत्वा कलेवरं शुद्धं कुर्याद्यत्नेन महात्मना ॥ मनो निवार्य संसारविषये च तथैव हि । मनोविकारभावं च त्यक्त्वा शून्यमयो भवेत् । प्रत्याहारो भवत्येव सर्वनिन्दाचमत्कृतः ॥ समाधिर्निश्चला बुद्धिः श्वासोच्छ्वासादिवर्जिता ॥"

त्राटक और कपालभाति * इन धौति आदि छः कर्मोंसे शरीरमें चेतनाका सञ्चार होसकता है ॥ १२ ॥

धौतिः ।

अन्तर्धौतिर्दन्तधौतिर्हृद्धौतिर्मूलशोधनम् ।
धौतिं चतुर्विधां कृत्वा घटं कुर्वन्ति निर्मलम् ॥१३॥

अर्थात्--शान्ति, सन्तोष, भोजन और निद्राका कम होना चित्तका दमन और अन्तःकरणकी शून्यता--इन सबका ही नाम यम है चाञ्चल्यत्याग, मनःस्थैर्य, निरन्तर उदासीन भाव, सकल विषयोंमें अनिच्छा, यथालाभसन्तोष परमेश्वरमें एकाग्रता और मान दान आदिका त्याग--इन सबका नाम नियम है । जगत्में जिस प्रकार जीव जन्तुओंकी संख्या नहीं है, ऐसे ही आसनोंकी संख्याका भी पार नहीं है । यत्नपूर्वक शरीरको विशुद्ध करना, चित्तको विषयोंसे लौटाना एवं चित्तके विकारोंको त्यागना, माया और वासनाशून्य होना, इसका नाम प्रत्याहार है योगके बलसे श्वासोच्छ्वासशून्य निश्चल बुद्धि होना समाधि कहाती है ।

ब्रह्मयामलमें लिखा है, कि--

इन्द्रियाणोन्द्रियार्थेभ्यो यत्प्रत्याहरते स्फुटम् ।
योगी कुम्भकमास्थाय प्रत्याहारः स उच्यते ॥

अर्थात् जिसके द्वारा योगी कुम्भकका अवलम्बन कर इन्द्रियों को उनके भोग्य विषयोंसे हटादे उसका नाम प्रत्याहार है ।

* ब्रह्मयामलमें लिखा है कि—

धौतिश्च गजकरिणी नुवस्तिर्लौलितिस्तथा ।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि महेश्वरि ॥
कर्मषट्कमिदं गोप्यं घटशोधनकारणम् ।
मेदश्लेष्माधिकः पूर्वं षट्कर्माणि समाचरेत् ॥
अन्यथा नाचरेत्तानि दोषाणामप्यभावतः ।

अर्थात्—धौति, गजकरिणी, वस्ति, लौलि, नेति और कपालभाति इनका नाम षट्कर्म है । इन षट्कर्मोंके द्वारा देहकी शुद्धि होसकती है; यह परम गोपनीय है । जिसके शरीरमें मेद या कफकी अधिकता हो, वही इन छः कर्मोंको करे, और जिनके शरीरमें ये दोष न हों, वे इनका आचरण न करें ॥

धौति चार प्रकारकी है—अन्तर्धौति, दन्तधौति, हृद्धौति और मूलशोधन इन चार प्रकारकी धौतियोंको कर शरीरको निर्मल करना चाहिये ॥ १३ ॥

अन्तर्धौतिः ।

वातसारं वारिसारं वह्निसारं बहिष्कृतम् ।
घटस्य निर्मलार्थाय अन्तर्धौतिश्चतुर्विधा ॥ १४ ॥

वातसार, वारिसार, वह्निसार और बहिष्कृत् इसप्रकार अंतर्धौति चार प्रकारकी है और इनके द्वारा देह निर्मल होसकता है॥१४॥

वातसारः ।

काकचञ्चुवदास्येन पिबेद्वायुं शनैः शनैः ।
चालयेदुदरं पश्चाद्वर्त्मना रेचयेच्छनैः ॥ १५ ॥

अपने दोनों ओठोंको कौएकी चोंचकी समान करके धीरे २ वार वारं वायुको पी उसको उदरमें परिचालित कर फिर मुख-द्वारा रेचन करने (निकालने) का नाम वातसार है ॥ १५ ॥

वातसारं परं गोप्यं देहनिर्मलकारणम् ।
सर्वरोगक्षयकरं देहानलविवर्धकम् ॥ १६ ॥

शास्त्रान्तरमें और भी लिखा है-

नेतियोगं हि सिद्धानां महाकफविनाशनम् ।
दण्डियोगं प्रवक्ष्यामि हृदग्रंथिभेदनम् ॥
धौतियोगं ततः पश्चात् सर्वमलविनाशनम् ।
वस्तियोगं हि परमं सर्वाङ्गोदरचालनम् ॥
क्षालनं परमं योगं नाडीनां क्षालनं स्मृतम् ।
एवं पञ्चामरायोगं योगिनामतिगोचरम् ॥

अर्थात्-नेतियोगसे श्लेष्मा-दोष दूर होजाता है, दण्डियोगसे हृदयकी गांठ खुलजाती है, धौतियोगसे मलसमूह नष्ट होजाता है, वस्तियोगसे सब अङ्ग और उदर परिचालित होता है और क्षालन-योगसे नाड़ियें क्षालित होती हैं, इसीका नाम पञ्चामरायोग है, यो-गियोंको इस पञ्चामराका साधन अवश्य करना चाहिये ।

इस वातसारके द्वारा देह निर्मल होजाता है समस्त रोग नष्ट होजाते हैं और जठराग्नि तीव्र होजाती है । यह परम गोपनीय है * ॥ १६ ॥

वारिसारः।

आकंठं पूरयेद्वारि वक्त्रेन च पिबेच्छनैः ।
चालयेदुदरेणैव चोदराद्रेचयेदधः ॥ १७ ॥

मुखसे कण्ठ तक जल भरकर धीरे २ पीजावे एवं क्षण भर तक उसको पेटमें घुमाकर अधोमार्ग द्वारा रेचन कर (निकाल) दे । इसका नाम वारिसार है ॥ १७ ॥

वारिसारं परं गोप्यं देहनिर्मलकारकम् ।
साधयेत्तत्प्रयत्नेन देवदेहं प्रपद्यते ॥ १८ ॥
वारिसारं परां धौतिं साधयेद्यः प्रयत्नतः ।
मलदेहं शोधयित्वा देवदेहं प्रपद्यते ॥ १९ ॥

---

* ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि—

"काकचञ्च्वा पिबेद्वायुं शीतलं वा विचक्षणः । प्राणापानविधानज्ञः स भवेन्मुक्तिभाजनः ॥ सरसं यः पिबेद्वायुं प्रत्यहं विधिना सुधीः । नश्यन्ति योगिनस्तस्य श्रमदाहजरामराः॥ काकचञ्च्वा पिबेद्वायुं संध्ययोरुभयोरपि । कुण्डलिन्या मुखे ध्यात्वा क्षयरोगस्य शांतये॥ अहर्निशं पिबेद्योगी काकचञ्च्वा विचक्षणः। दूरश्रुतिर्दूरदृष्टिस्तथा स्याद्दर्शनं खलु

अर्थात—बुद्धिमान् योगी काकचञ्चुकी समान मुख करके उससे शीतल वायु पिये, ऐसा प्राण अपान नामक वायुद्वयकी गतिको जानने वाला योगी मुक्ति पाता है । जो योगी प्रतिदिन यथाविधि सरस वायु का पान करते हैं उनके ऊपर श्रम,दाह,जरा,रोग आदि कोई भी आक्रमण करनेको समर्थ नहीं होसकता । "कुण्डलिनीमुखमें वायु आगई है" योगी ऐसी भावना रखकर सायङ्काल और प्रातःकाल कौएकी चोंचकी समान मुखकरके वायु पान करे,ऐसा करनेसे क्षयरोग शान्त होसकता है । बुद्धिमान् योगी रातदिन काकचञ्चुवत् मुखद्वारा वायु पान करते रहने पर दूरश्रुति (दूरकी बात सुननेकी शक्ति) और दूरदृष्टि (दूरके पदार्थको देखनेकी शक्ति) को अवश्य पासकता है ।

इस वारिसारके प्रयोगके द्वारा शरीरकी निर्मलता साधित होती है, यह परम गोप्य है,इसके द्वारा देवशरीर प्राप्त होसकता है, परन्तु यत्नके साथ इसका साधन करना चाहिये। जो इस श्रेष्ठ वारिसार-धौतिका साधन करते हैं उनका मलदेह शुद्ध हो कर देवशरीरकी समान होजाता है॥ १८॥ १९॥

अग्निसारः ।

नाभिग्रंथिं मेरुपृष्ठे शतवारं च कारयेत् ।
अग्निसारमयो धौतिर्योगिनां योगसिद्धिदा ॥
उदरामयजं त्यक्त्वा जठराग्निं विवर्धयेत् ॥ २० ॥

निःश्वास वन्द करके मेरुपृष्ठ (पीठमें) नाभिग्रन्थि (टूँडी) को सौ वार लगावे। इसका नाम अग्निधौति है, यह धौति योगियोंको योगसिद्धि देनेवाली है, इस धौतिके द्वारा उदरामयज (पेटके रोग) नष्ट होजाते हैं और जठराग्नि तीव्र होजाती है।

एषा धौतिः परा गोप्या देवानामपि दुर्लभा ।
केवलं धौतिमात्रेण देवदेहं भवेद् ध्रुवम् ॥२१॥

यह धौति परम गोप्य है और देवताओंको भी दुर्लभ है। इस धौतिके द्वारा मनुष्योंको देवताओंके शरीरकी समान देह प्राप्त होजाता है, यह निःसन्देह है॥ २१ ॥

वहिष्कृतधौतिः ।

काकीमुद्रां शोधयित्वा पूरयेदुदरं महत् ।
धारयेदर्धयामन्तु चालयेदधोवर्त्मना ॥
एषा धौतिः परा गोप्या न प्रकाश्या कदाचन ॥२२॥

पहिले काकचञ्चुकी समान मुख करके वायु पीकर जठरको भरले, इस वायुको पेटमें अर्धप्रहर (डेढ़ घण्टे) रखकर अधोमार्ग से चालन करे (निकाल दे) इसका ही नाम वहिष्कृत धौति है, यह धौति परमगोपनीय है॥ २२॥

प्रक्षालनम् ।

नाभिमग्नो जले स्थित्वा शक्तिनाडीं विसर्जयेत् ।
कराभ्यां क्षालयेन्नाडीं यावन्मलविसर्जनम् ॥
तावत् प्रक्षाल्य नाडीं च उदरे वेशयेत् पुनः ॥२३॥

नाभि तक के जलमें स्थित होकर शक्तिनाड़ी (त्रिवली) को बाहर करके जबतक उसका सब मल निःशेषरूपसे धुल न जाय तब तक हाथोंसे उसका प्रक्षालन करता रहे, अन्तमें उत्तमरूप से धुलजाने पर उस नाड़ीको फिर उदरके भीतर प्रवेशित करदे।

इदं प्रक्षालनं गोप्यं देवानामपि दुर्लभम् ।
केवलं धौतिमात्रेण देवदेहो भवेद् ध्रुवम् ॥ २४ ॥

यह प्रक्षालन देवताओंके लिये भी दुर्लभ (कठिन) है, इस धौतिके द्वारा देवतुल्य शरीर निःसन्देह प्राप्त होता है * ॥२४॥

यामार्धं धारणां शक्तिं यावन्न साधयेन्नरः ।
बहिष्कृतमहद्धौतिस्तावच्चैव न जायते ॥ २५ ॥

साधक जबतक यामार्धकाल (डेढ घण्टे) तक श्वास रोकने की धारणा-शक्ति न पावे तबतक इस बहिष्कृतधौतिको न करे।

---

* तन्त्रान्तरमें लिखा है कि-

"स चावश्यं क्षालनं च कुर्यान्नाड्यादिशोधने । नेडनीयोगमार्गेण नाडीक्षालनतत्परः ॥ भवत्येव महाकालो राजराजेश्वरो यथा । केवलं प्राणवायोश्च धारणात् क्षालनं भवेत् ॥ विना क्षालनयोगेन देहशुद्धिर्न जायते । क्षालनं नाडिकादीनां श्लेष्मपित्तनिवारणम् ॥"

अर्थात्-योगियोंको नाडी आदिका साधन और क्षालन अवश्य करना चाहिये, जो योगी नेडनीयोगसे नाडीप्रक्षालन करते हैं वे महाकाल और राजराजेश्वरकी समान होजाते हैं, केवल प्राणवायुके धारणसे ही क्षालनयोग सिद्ध होजाता है, क्षालन योगके अतिरिक्त और किसी प्रकारसे देहशुद्धि नहीं होसकती, क्षालनयोग नाडी आदिके श्लेष्म पित्त आदि दोषोंको नष्ट कर डालता है।

दन्तधौतिः ।

दन्तमूलं जिह्वामूलं रन्ध्रञ्च कर्णयुग्मयोः ।
कपालरन्ध्रं पञ्चैते दन्तधौतिं विधीयते ॥ २६ ॥

दन्तधौति पाँच प्रकारकी है, दन्तमूलधौति, जिह्वामूलधौति, कर्णरन्ध्रधौति और कपालरन्ध्रधौति ॥ २६ ॥

दन्तमूलधौतिः ।

खादिरेण रसेनाथ मृदा चैव विशुद्धया ।
मार्जयेद् दन्तमूलं च यावत् किल्विषमाहरेत्॥२७॥

खैरके रससे अथवा विशुद्ध मट्टीसे जवतक सब मैल दूर न हो तवतक दाँतोंको जडोंका मार्जन करे ॥ २७ ॥

दन्तमूलं परा धौतिर्योगिनां योगसाधने ।
नित्यं कुर्यात् प्रभाते च दन्तरक्षाय योगवित्॥२८॥

योगियोंके योगसाधनमें दन्तमूलधौति सबसे श्रेष्ठ कहलाती है, योगज्ञ साधक प्रतिदिन प्रातःकाल दन्तरक्षार्थ इस धौतिको करे, धावन (शोधने) आदिके काममें दन्तमूलधौति ही योगियों के करनेका मुख्य काम है ॥ २८ ॥

जिह्वाशोधनम् ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि जिह्वाशोधनकारणम् ।
जरामरणरोगादीन् नाशयेद् दीर्घलम्बिका ॥२९॥

अब जिह्वशोधनका कारण कहते हैं कि-जिह्वामूलशोधनसे जिह्वा लम्बी होजाती है और जरा,मरण और रोग आदि दूर हो जाते हैं ॥ २९ ॥

जिह्वामूलधौति-प्रयोगः ।

तर्जनीमध्यमानामा अंगुलित्रययोगतः ।
वेशयेद् गलमध्ये तु मार्जयेल्लम्बिकाजडम् ।
शनैः शनैर्मार्जयित्वा कफदोषं निवारयेत् ॥ ३० ॥

तर्जनी (अँगूठेके पासकी) मध्यमा (बीचकी) और अनामिका (छोटी अँगुलीके पासकी) अँगुलियोंको गलेके बीचमें डालकर जिह्वाकी जड़ तक मार्जन करे, बारम्बार इस प्रकार मार्जन करनेसे श्लेष्मादोष ध्वंस होजाता है ॥ ३० ॥

मार्जयेन्नवनीतेन दोहयेच्च पुनः पुनः ।
तदग्रं लोहयन्त्रेण कर्षयित्वा शनैः शनैः ॥ ३१ ॥

बारम्बार नवनीत (मक्खन) से जिह्वाको मार्जन कर और दुह कर लोहयन्त्र (चीमटे) से जिह्वाके अग्रभागको बारम्बार खेंचकर बाहर निकाले ॥ ३१ ॥

नित्यं कुर्यात् प्रयत्नेन रवेरुदयकेऽस्तके ।
एवं कृते च नित्ये च लंबिका दीर्घतां व्रजेत् ॥३२॥

प्रतिदिन प्रभातकाल और सूर्यास्तकालमें यत्नके साथ इस धौतिका अभ्यास करे, प्रतिदिन ऐसा अभ्यास करनेसे जिह्वा लम्बी होजाती है ॥ ३२ ॥

कर्णधौतिप्रयोगः ।

तर्जन्यनामिकायोगान्मार्जयेत् कर्णरन्ध्रयोः ।
नित्यमभ्यासयोगेन नादान्तरं प्रकाशयेत् ॥ ३३ ॥

तर्जनी और अनामिका अंगुलियोंके योगसे कानके दोनों रन्ध्रोंको नित्य शुद्ध करे, प्रतिदिन ऐसा अभ्यास करनेसे एक प्रकारका नाद प्रकाशित हुआ करता है ॥ ३३ ॥

कपालरन्ध्रप्रयोगः

वृद्धांगुष्ठेन दक्षेण मार्जयेद्भालरन्ध्रकम् ।
एवमभ्यासयोगेन कफदोषं निवारयेत् ॥ ३४ ॥
नाडी निर्मलतां याति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ।
निद्रान्ते भोजनान्ते च दिवान्ते च दिने दिने ॥३५॥

दाहिने हाथके अँगूठेसे कपालरन्ध्रका मार्जन करे, इस कपालरन्ध्र-धौतिका अभ्यास करनेसे श्लेष्मादोष नष्ट होजाता

है नाडी निर्मलताको प्राप्त होती है और दिव्यदृष्टि होजाती है, प्रतिदिन सोकर उठने पर, भोजन करनेके पीछे, और सायं-कालके समय इस धौतिका अभ्यास करे ॥ २४–२५ ॥

हृद्धौतिः ।

हृद्धौतिं त्रिविधां कुर्याद् दण्डवमनवाससा ॥२६॥

हृद्धौति–दण्डधौति, वमनधौति और वासधौति इसप्रकार तीन प्रकारकी है ॥ २६ ॥

दण्डधौतिः ।

रम्भादण्डं हरिद्रादण्डं वेत्रदण्डं तथैव च ।
हृन्मध्ये चालयित्वा तु पुनः प्रत्याहरेच्छनैः ॥ २७ ॥

केलेके बीचके सारभागका दण्डा, हरिद्रा (हल्दी) का दंडा अथवा वेंतका दण्डा हृदयके मध्यमें बार २ घुसाकर धीरे २ निकाले इसका नाम दण्डधौति है ॥ २७ ॥

कफपित्तं तथा क्लेदं रेचयेदूर्ध्ववर्त्मना ।
दण्डधौतिविधानेन हृद्रोगं नाशयेद् ध्रुवम् ॥ २८ ॥

इस दण्डधौतिका अभ्यास करनेसे उर्ध्वभाग (मुख) द्वारा कफ, पित्त और क्लेद आदि बाहर निकल जाता है, और हृद्रोग नष्ट होजाता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २८ ॥

वमनधौतिः ।

भोजनान्ते पिबेद्वारि चाकण्ठपूरितं सुधीः ।
ऊर्ध्वदृष्टिं क्षणं कृत्वा तज्जलं वमयेत्पुनः ॥
नित्यमभ्यासयोगेन कफपित्तं निवारयेत् ॥ २९ ॥

बुद्धिमान साधक आहारके अन्तमें कण्ठ तक जल पीले और क्षणभर बाद ऊपरको नेत्र करके उस जलको निकाल दे, इस प्रकार नित्य अभ्यास करनेसे कफ और पित्त दूर होजाते हैं॥२९॥

वासधौतिः ।

चतुरंगुलविस्तारं सूक्ष्मवस्त्रं शनैर्ग्रसेत् ।
पुनः प्रत्याहरेदेतत् प्रोच्यते धौतिकर्मकम् ॥ ४० ॥

चार अंगुल सूक्ष्म कपड़ेको धीरे धीरे निगल जावे और फिर निकाल लेवे, इसका ही नाम वासधौति है ॥ ४० ॥

गुल्मज्वरप्लीहकुष्ठं कफपित्तं विनश्यति ।
आरोग्यं बलपुष्टिश्च भवेत्तस्य दिने दिने ॥ ४१ ॥

इस वासधौतिके अभ्याससे गुल्म, ज्वर, प्लीहा, कुष्ठ, कफ, पित्त आदिका ध्वंस होजाता है और आरोग्य, बल, और पुष्टि की दिन २ वृद्धि होती है * ॥ ४१ ॥

मूलशोधनम् ।

अपानक्रूरता तावद्यावन्मूलं न शोधयेत् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मूलशोधनमाचरेत् ॥ ४२ ॥

---

* ब्रह्मयामलमें लिखा है, कि—

"चतुरङ्गुलविस्तारं हस्तपञ्चदशेन तु । गुरूपदिष्टमार्गेण सिक्तं वस्त्रं शनैर्ग्रसेत् ॥ ततः प्रत्याहरेच्चैतत् क्षालनं धौतिकर्म तत् ॥ श्वासः कासः प्लीहा कुष्ठं कफरोगाश्च विंशतिः ॥ धौतिकर्मप्रसादेन शुद्ध्यन्ते च न संशयः ॥"

अर्थात्—चार अंगुल चौडा और पन्द्रह हाथ लम्बा सिक्त (गीला) वस्त्र शनैः २ निगल जाय किन्तु गुरुसे बिना सीखे इस कामको न करे, फिर धीरे २ इस वस्त्रको निकाले, इस प्रकारके क्षालनका नाम धौतिकर्म है, इसके द्वारा श्वास, कास, प्लीहा, कुष्ठ और बीस प्रकारके श्लेष्मरोग नष्ट होजाते हैं, यह निःसन्देह है ।

रुद्रयामलमें भी कहा है—

"सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं वस्त्रं द्वात्रिंशद्धस्तमानतः । एकहस्तक्रमेणैव यः करोति शनैः शनैः ॥ यावद् द्वात्रिंशद्धस्तं च तावत्कालं क्रियां चरेत् । एतत् क्रियाप्रयोगेन योगी भवति तत्क्षणात् ॥ क्रमेण मन्त्रसिद्धिः स्यात्कालजालवशं नयेत् ॥"

अर्थात्—बत्तीस हाथ लम्बे अति सूक्ष्म वस्त्र को एक २ हाथ करके धीरे २ पूरा निगल जाय सब निगल जाने पर धीरे २ फिर निकाले, इसका नाम वासधौति है, इस धौतिके द्वारा योगित्वकी प्राप्ति होजाती है और मन्त्रसिद्धि प्राप्त होसकती है, मृत्यु उस पर आक्रमण करनेकी हिम्मत नहीं करसकता ।

जब तक मूलशोधन नहीं होता है अर्थात् गुह्यप्रदेश प्रक्षालित नहीं होता है, तबतक अपानक्रूरता विद्यमान रहती है अर्थात् गुह्यवायु कुटिलरूपमें रहता है, अतएव यत्नपूर्वक गुह्यशोधन सब प्रकारसे करना चाहिये ॥ ४२ ॥

पीतमूलस्य दंडेन मध्यमांगुलिनापि वा ।
यत्नेन क्षालयेद् गुह्यं वारिणा च पुनः पुनः ॥ ४३ ॥

हल्दीकी जडसे अथवा बीचकी अंगुलिके द्वारा जलके साथ बारम्बार यत्नपूर्वक गुह्यप्रक्षालन करे ॥ ४३ ॥

वारयेत् कोष्ठकाठिन्यमामाजीर्णं निवारयेत् ।
कारणं कान्तिपुष्ट्योश्च दीपनं वह्निमंडलम् ॥४४॥

मूलशोधनसे कोष्ठकाठिन्य और आमाजीर्ण दूर होजाता है, शरीर कान्तिमान् और पुष्ट होजाता है तथा जठरानल बढ जाता है ॥ ४४ ॥

बस्तिप्रकरणम् ।

जलबस्तिः शुष्कबस्तिर्वस्तिः स्याद् द्विविधा स्मृता ।
जलबस्तिं जले कुर्यात् शुष्कबस्तिं सदा क्षितौ ॥४५॥

बस्ति दो प्रकारकी है, जलबस्ति और शुष्कबस्ति । जलबस्तिको जलमें और शुष्कबस्तिको सदा स्थलमें करे ॥ ४५ ॥

जलबस्तिः ।

नाभिमग्नजले पायुं न्यस्तवानुत्कटासनम् ।
आकुञ्चनं प्रसारञ्च जलबस्तिं समाचरेत् ॥ ४६ ॥

नाभिपर्यन्त जलमें उत्कटासनसे बैठकर गुह्यदेशको सकोड़े और फैलावे इसको जलबस्ति कहते हैं * ॥ ४६ ॥

---

* ब्रह्मयामलमें लिखा है, कि-
"नाभिनिम्नजले वायुं न्यस्तनालोत्कटासनम् । आधाराकुञ्चनं कुर्यात् क्षालनं बस्तिकर्म तत् ॥ गुल्मप्लीहोदरीरोगवातपित्तकफोद्भवाः । बस्तिकर्मप्रभावेन सर्वरोगक्षयो भवेत् ॥"

प्रमेहं च उदावर्तं क्रूरवायुं निवारयेत् ।
भवेत् स्वच्छन्ददेहश्च कामदेवसमो भवेत् ॥ ४७ ॥

जलवस्तिके प्रयोगसे प्रमेह, उदावर्त्त और क्रूरवायु ध्वंस हो जाता है और साधक स्वस्थ देहवाला होकर कामदेवकी समान होजाता है ॥ ४७ ॥

वस्तिं पश्चिमोत्तानेन चालयित्वा शनैरधः ।
अश्विनीमुद्रया पायुमाकुञ्चयेत्प्रसारयेत् ॥ ४८ ॥

जलमें पश्चिमोत्तान आसनसे बैठकर क्रमशः अधोभागमें वस्तिको चलावे और अश्विनीमुद्रासे गुह्यस्थानको सकोड़े और फैलावे । इसप्रकार करनेसे जलवस्ति सिद्ध होजाती है ॥४८॥

एवमभ्यासयोगेन कोष्ठदोषं न विद्यते ।
विवर्धयेज्जठराग्निं आमवातं विनाशयेत् ॥ ४९ ॥

जलवस्तिका साधन करनेसे कोष्ठदोष और आमवात नष्ट हो जाते हैं और जठराग्नि बढ जाती है ॥ ४९ ॥

नेतियोगः ।

वितस्तिमानं सूक्ष्मसूत्रं नासानाले प्रवेशयेत् ।
मुखान्निर्गमयेत्पश्चात्प्रोच्यते नेतिकर्मकम् ॥५० ॥

आधे हाथका सूक्ष्म वस्त्र (डोरा) नासिकामें डाले और उसका मुखके मार्गसे निकाले, इसका नाम नेतिकर्म है ॥५०॥

साधनान्नेतिकर्माणि खेचरीसिद्धिमाप्नुयात् ।
कफदोषा विनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ॥ ५१ ॥

अर्थात्-नाभिपर्यन्त जलमें उत्कटासनसे बैठकर गुह्यक्षालन और हस्तद्वारा आकुञ्चन और प्रसारण करे, इसको ही वस्तिकर्म कहते हैं । इसका साधन होजाने पर गुल्म, प्लीहा, उदरी, वात, पित्त और श्लेष्मासे उत्पन्न होनेवाले रोग और सब रोग भी विनष्ट होजाते हैं ।

नेतिकर्म करनेसे खेचरीसिद्धि प्राप्त होजाती है, कफदोष नष्ट होजाते हैं और दृष्टि दिव्य होजाती है * ॥ ५१ ॥

लौलिकीयोगः।

अमन्दवेगे तुन्दञ्च भ्रामयेदुभपार्श्वयोः।
सर्वरोगान्निहन्तीह देहानलविवर्धनम् ॥ ५२ ॥

प्रबलवेगसे पेटको दोनों पार्श्वोंमें घुमावे, इसको लौलिकीयोग कहते हैं, इस लौलिकीयोगसे सब रोग दूर होजाते हैं और जठराग्नि बढ़ जाती है ॥ ५२ ॥

त्राटकम्।

निमेषोन्मेषकं त्यक्त्वा सूक्ष्मलक्ष्यं निरीक्षयेत्।
यावदश्रूणि पतन्ति त्राटकं प्रोच्यते बुधैः ॥ ५३ ॥

जब तक आँसू न गिरे तब तक पलक मारे विना किसी सूक्ष्म वस्तुको देखते रहनेका नाम त्राटक है ॥ ५३ ॥

एवमभ्यासयोगेन शांभवी जायते ध्रुवम्।
नेत्ररोगा विनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ॥ ५४ ॥

---

* रुद्रयामलमें लिखा है, कि—

"सूत्रं वितस्तिमात्रं तु नासानाले प्रवेशयेत्।
मुखेन गमयेच्चैषा नेतिः स्यात् परमेश्वरि ॥
कापालशोधिनी कण्ठा दिव्यदृष्टिप्रदायिनी।
य ऊर्ध्वं जायते रोगो नयत्याशु च तं नेतिः"॥

अर्थात्—एक बिलस्तका डोरा नासिकाके छिद्रमें डाल कर मुखमेंको निकाले, इसका नाम नेतिकर्म है, हे परमेश्वरि! इस नेतिकर्मके साधनसे शिरके रोग नष्ट होजाते हैं और दिव्यदृष्टि मिल जाती है। रुद्रयामलमें लिखा है, कि—इस नेतियोगके साधनसे शिरस्थित दूषित कफ नष्ट होजाता है, इस योगसाधनसे नासिकाविवर निर्मल होजाता है और श्वासप्रश्वासके समय परम आनन्द प्रतीत होता है।

त्राटकयोगका अभ्यास करनेसे शांभवीमुद्रा सिद्ध होजाती है नेत्रोंके रोग नष्ट होजाते हैं और दृष्टि दिव्य होजाती है ॥५४॥

कपालभातिः ।

वातक्रमेण व्युत्क्रमेण शीत्क्रमेण विशेषतः ।
भालभातिं त्रिधा कुर्यात् कफदोषं निवारयेत् ॥५५॥

कपालभाति तीन प्रकारकी है—वातक्रमकपालभाति, व्युत्क्रमकपालभाति और शीत्क्रमकपालभाति । कपालभातियोगके साधनसे कफदोष नष्ट होजाता है ॥ ५५ ॥

वातक्रमकपालभातिः ।

इडया पूरयेद्वायुं रेचयेत् पिंगलां पुनः ।
पिंगलया पूरयित्वा पुनश्चन्द्रेण रेचयेत् ॥ ५६ ॥
पूरकं रेचकं कृत्वा वेगेन न तु चालयेत् ।
एवमभ्यासयोगेन कफदोषं निवारयेत् ॥ ५७ ॥

इडा अर्थात् बाएँ नासिकारंध्रसे वायुको भरे और पिंगला अर्थात् दाहिने नासारन्ध्र द्वारा उसका रेचन करे एवं दाहिने नासारंध्रसे वायुको खेंचे और बायेंसे निकाल दे, जिस समय वायुका खेंचे या निकाले उस समय कभी भी वेगसे काम न लेय, इस योगका साधन करने पर कफदोष नष्ट होजाता है, इसका ही नाम वातक्रमकपालभाति है ॥ ५६—५७ ॥

व्युत्क्रमकपालभातिः ।

नासाभ्यां जलमाकृष्य पुनर्वक्त्रेण रेचयेत् ।
पायं पायं व्युत्क्रमेण श्लेष्मदोषं निवारयेत् ॥५८॥

नाकके दोनों नथौड़ोंसे जल खेंचे और उसको मुखमेंको निकाल देय और मुखसे जल खेंच कर नाकके दोनों नथौड़ोंसे निकाल दे, इसको व्युत्क्रमकपालभाति कहते हैं, इससे कफदोष दूर होजाता है ॥ ५८ ॥

शीत्क्रमकपालभातिः ।

शीत्कृत्य पीत्वा वक्त्रेण नासानालैर्विवर्जयेत् ।
एवमभ्यासयोगेन कामदेवसमो भवेत् ॥ ५९ ॥
न जायते च वार्धक्यं जरा नैव प्रजायते ।
भवेत्स्वच्छन्ददेहश्च कफदोषं निवारयेत् ॥ ६० ॥

मुखद्वारा "शीत्" करके जल लेय और नथौड़ोंसे निकाल दे, इसको शीत्क्रमकपालभाति कहते हैं। इस योगका अभ्यास करनेसे कामदेवकी समान कान्तिमान् होसकता है । इसके अभ्याससे वार्धक्य और जराके हाथसे परित्राण पासकता है तथा शरीर स्वस्थ होजाता है और कफदोष नष्ट होजाता है ॥

॥ प्रथमोपदेशः समाप्तः ॥

❀ द्वितीयोपदेशः ❀

आसनप्रकरणम्

घेरण्ड उवाच ।

आसनानि समस्तानि यावन्तो जीवजन्तवः ।
चतुरशीतिलक्षाणि शिवेन कथितं पुरा ॥ १ ॥
तेषां मध्ये विशिष्टानि षोडशोनं शतं कृतम् ।
तेषां मध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिंशदासनं शुभम् ॥ २ ॥

घेरण्ड कहने लगे, कि–संसारमें जितने जीवजन्तु हैं उतने ही आसन हैं, पहिले देवदेव शङ्करने चौरासी लाख आसन कहे हैं, उनमें चौरासी आसन सर्वश्रेष्ठ हैं और मनुष्यलोकमें उन चौरासी आसनोंमें बत्तीस ही मङ्गलप्रद कहे हैं ॥ १–२ ॥

आसनभेदाः ।

सिद्धं पद्मं तथा भद्रं मुक्तं वज्रं च स्वस्तिकम् ।
सिंहं च गोमुखं वीरं धनुरासनमेव च ॥ ३ ॥

मृतं गुप्तं तथा मत्स्यं मत्स्येन्द्रासनमेव च ।
गोरक्षं पश्चिमोत्तानं उत्कटं संकटं तथा ॥ ४ ॥
मयूरं कुक्कुटं कूर्मं तथा चोत्तानकूर्मकम् ।
उत्तानमण्डुकं वृक्षं मण्डुकं गरुडं वृषम् ॥ ५ ॥
शलभं मकरं उष्ट्रं भुजंगं योगमासनम् ।
द्वात्रिंशदासनानि तु मर्त्यलोके च सिद्धिदम् ॥ ६ ॥

सिद्धासन, पद्मासन, भद्रासन, मुक्तासन, वज्रासन, स्वस्तिकासन, सिंहासन, गोमुखासन, वीरासन, धनुरासन, मृतासन, गुप्तासन, मत्स्यासन, मत्स्येन्द्रासन, गोरक्षासन, पश्चिमोत्तानासन, उत्कटासन, संकटासन, मयूरासन, कुक्कुटासन, कूर्मासन, उत्तानकूर्मासन, उत्तानमण्डूकासन, वृक्षासन, मण्डूकासन, गरुडासन, वृषभासन, शलभासन, मकरासन, उष्ट्रासन, भुजङ्गासन और योगासन मनुष्यलोकमें ये बत्तीस आसन ही सिद्धि देने वाले हैं * ॥ ३-६ ॥

आसनानां प्रयोगाः ।

सिद्धासनम् ।

योनिस्थानकमंघ्रिमूलघटितं सम्पीड्य गुल्फेतरम् ।
मेढ्रे संप्रणिधाय तं तु चिबुकं कृत्वा हृदि स्थापितम् ॥
स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्यन्भ्रुवोरन्तरम् ।
मोक्षं चैव विधीयते फलकरं सिद्धासनं प्रोच्यते ॥७॥

* दूसरे शास्त्रमें लिखा है कि—
"चतुरशीत्यासनानि संति नानाविधानि च ।
तेभ्यश्चतुष्कमादाय मयोक्तानि ब्रवीम्यहम् ॥
सिद्धासनं पद्मासनं चोग्रकं चैव स्वस्तिकम् ।"
अर्थात् आसन बहुत प्रकारके हैं, उनमें चौरासी आसन श्रेष्ठ हैं, उन चौरासीमें भी चार आसन सर्वश्रेष्ठ हैं, उनको मैं कहता हूँ, सिद्धासन, पद्मासन, उग्रासन और स्वस्तिकासन ।

जितेन्द्रिय साधक पैरकी एड़ीको योनिस्थान (अण्डकोश और गुदाके बीचके स्थान) में भिड़ावे और दूसरी एड़ीको लिंगके ऊपर रख कर ठोड़ीको हृदयमें लगावे, फिर स्थिर और सीधा रहकर अचलदृष्टिसे दोनों आँखोंके बीचके स्थानको देखे, इसको ही सिद्धासन कहते हैं इसके अभ्याससे मोक्षलाभ होता है * ॥ ७ ॥

पद्मासनम्

वामोरूपरि दक्षिणं हि चरणं संस्थाप्य वामं तथा ।
दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना कृत्वा कराभ्यां दृढम् ॥

---

* तन्त्रान्तरमें लिखा है, कि—

येनाभ्यासवशाच्छीघ्रं योगनिष्पत्तिमाप्नुयात् ।
सिद्धासनं तदा सेव्यं पवनाभ्यासिभिः परम् ॥
येन संसारमुत्सृज्य लभ्यते परमा गतिः ।
नातः परतरं गुह्यमासनं विद्यते भुवि ॥

अर्थात् सिद्धासनके अभ्याससे शीघ्र ही सिद्धि मिलती है, इसकी अपेक्षा पृथिवीमें और कोई भी आसन गुप्त नहीं है, इसके प्रसादसे संसारको त्याग और परम गतिकी प्राप्ति होती है । पवनाभ्यासी योगियोंको इस आसनको सदा करना चाहिये । यह आसन और रीतिसे भी होसकता है, यथा—

योनिं संपीड्य यत्नेन पादमूलेन साधकः ।
मेढ्रोपरि पादमूलं विन्यसेद्योगवित्सदा ॥
ऊर्ध्वं निरीक्ष्य भ्रूमध्यं निश्चलो नियतेन्द्रियः ।
विशेषवक्रकायश्च रहस्युद्वेगवर्जितः ॥
एतत् सिद्धासनं प्रोक्तं सिद्धानां च शुभप्रदम् ।

अर्थात् योगज्ञ साधक एक पैरकी एड़ीसे यत्नपूर्वक योनिस्थानको दबावे और दूसरे पैरकी एड़ीको लिङ्गके ऊपर रखकर ऊपरको दोनों भौंके मध्यस्थानको देखे इस समय, उद्वेगशून्य, नियतेन्द्रिय और सरल देह होकर रहे, इसका ही नाम सिद्धासन है, यह आसन योगियोंको मङ्गलप्रद है ॥

अङ्गुष्ठे हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकयेत् ।
एतद्व्याधिनाशकारणपरं पद्मासनं चोच्यते ॥८॥

दाहिना चरण बाईं जाँघ पर और बाँया चरण दाहिनी जाँघ पर रखकर, हाथोंको पीठकी ओर लेजाकर दायें हाथसे बायें पैरका अँगूठा और बायें हाथसे दाहिने पैरका अँगूठा दृढ़तासे पकड़कर ठोड़ीको हृदय पर रख नासिकाके अग्रभागको देखता रहे, इसका नाम पद्मासन है, इस आसनका अभ्यास करनेसे जितने भी रोग हैं वे सब दूर होजाते हैं * ॥ ८ ॥

भद्रासनम् ।

गुल्फौ च वृषणस्याधो व्युत्क्रमेण समाहितः ।
पादाङ्गुष्ठं कराभ्यां च धृत्वा च पृष्ठदेशतः ॥
जालंधरं समासाद्य नासाग्रमवलोकयन् ।
भद्रासनं भवेदेतत् सर्वव्याधिविनाशकम् ॥ ९ ॥

दोनों एड़ियोंको अण्डकोषोंके नीचे उलटकर धरे और पीठकी ओरको दोनों हाथ कर अँगूठोंको पकड़ जालन्धरबन्ध करके नासिकाके अग्रभागको देखे, इसका नाम भद्रासन है, इस आसनका अभ्यास होने पर सब रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ९ ॥

---

* बुद्धिमान् योगीके सिवाय इस पद्मासनका साधन करनेमें और कोई समर्थ नहीं होसकता इस आसनका अभ्यास करनेसे प्राणवायु नाड़ीरन्ध्रमें समानभावसे बहने लगता है और इसके अभ्याससे प्राणायामके समय वायु देहके बीचमें सरलभावसे विचरण करता है पद्मासनसे बैठ विधानके अनुसार प्राण और अपानवायुका रेचन पूरक करनेसे सम्पूर्ण बन्धनोंसे छूटजाता है ।

दुर्लभं येन केनापि धीमता लभ्यते परम् ।
अनुष्ठाने कृते प्राणः समश्चलति तत्क्षणात् ॥
भवेदभ्यासने सम्यक् साधकस्य न संशयः ।
पद्मासने स्थितो योगी प्राणापानविधानतः ॥
पूरयेत्स विमुक्तः स्यात् सत्यं सत्यं हि पार्वति ।

मुक्तासनम् ।

पायुमूले वामगुल्फं दक्षगुल्फं तथोपरि ।
शिरोग्रीवासमं कार्यं मुक्तासनं तु सिद्धिदम् ॥१०॥

बाईं एड़ी गुदाकी जड़में लगाकर उसके ऊपर दाहिनी एड़ी रक्खे, मस्तक और ग्रीवाको समभावसे रख देहको सीधी करके बैठे, इसका नाम मुक्तासन है, यह आसन साधकोंको सिद्धि देनेवाला है ॥ १० ॥

वज्रासनम् ।

जङ्घाभ्यां वज्रवत्कृत्वा गुदपार्श्वे पदावुभौ ।
वज्रासनं भवेदेतत्—योगिनां सिद्धिदायकम् ॥११॥

दोनों जाँघोंको वज्रकी समान (आकार वाली) करके गुदाके दोनों ओर दोनों पैरोंको लगानेसे वज्रासन सिद्ध होता है, यह आसन योगियोंको सिद्धि देनेवाला है ॥ ११ ॥

स्वस्तिकासनम् ।

जानूर्वोरन्तरं कृत्वा योगी पादतले उभे ।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्ष्यते ॥ १२ ॥

दोनों जाघों और घुटनोंके मध्यभागमें दोनों पादतलोंको रख त्रिकोणाकार आसन बाँध सरल भावसे बैठनेका नाम स्वतिकासन है * ॥ १२ ॥

---

* संहितान्तरमें लिखा है, कि—

जानूर्वोरन्तरे सम्यग् धृत्वा पादतले उभे ।
ऋजुकायः सुखासीनः स्वस्तिकं तत् प्रचक्षते ॥
अनेन विधिना योगी साधयेन्मारुतं सुधीः ।
देहे न क्रमते व्याधिस्तस्य वायुश्च सिद्ध्यति ।
स्वस्तिकं योगिभिर्गोप्यं सुस्थीकरणमुत्तमम् ॥

अर्थात् जानु और ऊरुके मध्यस्थलमें अच्छी तरहसे पादतल-द्वय स्थापित करके सरलतासे सुखपूर्वक बैठनेको स्वस्तिकासन कहते हैं, इसका साधन करने पर समस्त रोग दूर होजाते हैं

सिंहासनम् ।

गुल्फौ च वृषणस्याधो व्युत्क्रमेणोर्ध्वतां गतौ ।
चितिमूलौ भूमिसंस्थौ कृत्वा च जानुनोपरि ॥
व्यक्तवक्त्रो जलन्धरञ्च नासाग्रमवलोकयेत् ।
सिंहासनं भवेदेतत्सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ १३ ॥

दोनों एड़ियोंको अंडकोशों के नीचे परस्पर उलट पुलटके लगा उनको ऊपर की ओर वाहर करले और दोनों घुटनोंके ऊपर मुखको स्पष्ट रीतिसे ऊपरको करके जालन्धर-बन्धसे नासिकाके अग्रभागको देखे, इसका नाम सिंहासन है, इस आसनसे सब प्रकारके रोग नष्ट होजाते हैं * ॥ १३ ॥

गोमुखासनम् ।

पादौ च भूमौ संस्थाप्य पृष्ठपार्श्वे निवेशयेत् ।
स्थिरकायं समासाद्य गोमुखं गोमुखाकृतिः ॥१४॥

पृथ्वीमें दोनों चरणोंको स्थापित करके पीठकी वगलोंमें लगावे और शरीरको सरल रखकर गोमुखकी समान उन्नत मुख करके बैठनेका नाम गोमुखासन है ॥ १४ ॥

वीरासनम् ।

एकपादमथैकस्मिन्विन्यसेदुरुसंस्थितम् ।
इतरस्मिंस्तथा पश्चाद्वीरासनमिति स्मृतम् ॥ १५ ॥

एक जाँघ पर एक चरण रखकर दूसरे चरणको पीछेको निकाल दे इसको वीरासन कहते हैं ॥ १५ ॥

और प्राणायाम सिद्धि होजाती है इसका साधन करनेसे देह स्वस्थ होजाता है । इसको योगी गुप्त रक्खें ।

* बद्धा गलशिरोजालं हृदये चिबुकं न्यसेत् ।
बन्धो जालन्धरः प्रोक्तो देवानामपि दुर्लभः ॥

अर्थात्-गलेकी नसोंको सकोड़कर ठोढीको हृदय पर रक्खे इसको जालन्धरबन्ध कहते हैं ।

धनुरासनम्

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ करौ च पृष्ठे धृतपादयुग्मम् ।
कृत्वा धनुस्तुल्यपरिवर्तितांगं निगद्य योगी धनुरासनं तत् ॥

दोनों पैरोंको पृथ्वीपर दण्डकी समान सूधे फैलाकर दोनों हाथोंको पीठकी ओर करके दोनों चरणोंको पकड लेय और शरीरको धनुषकी समान वक्रभावसे रक्खे, योगीश्वर इसको धनुरासन कहते हैं ॥ १६ ॥

मृतासनम् ।

उत्तानशववद्भूमौ शयानं तु शवासनम् ।
शवासनं श्रमहरं चित्तविश्रान्तिकारणम् ॥ १७ ॥

मुर्देकी समान भूमिमें लेटनेका नाम मृतासन है, इसको ही शवासन कहते हैं, इस आसनसे श्रम दूर होजाता है और चित्त को सुख मिलता है ॥ १७ ॥

गुप्तासनम् ।

जानुनोरन्तरे पादौ कृत्वा पादौ च गोपयेत् ।
पादोपरि च संस्थाप्य गुदं गुप्तासनं विदुः ॥ १८ ॥

दोनों घुटुओंके मध्यभागमें दोनों पैरोंको गुप्तभावसे रक्खे और उन पैरोंमें गुह्यदेशको रखलेय, इसका नाम गुप्तासन है १८

मत्स्यासनम् ।

मुक्तपद्मासनं कृत्वा उत्तानशयनं चरेत् ।
कूर्पराभ्यां शिरो वेष्ट्य मत्स्यासनं तु रोगहा ॥ १९ ॥

मुक्तपद्मासन करके हाथकी कोहिनियोंसे शिरको लपेटके चित्त होकर लेटनेको मत्स्यासन कहते हैं, यह आसन रोगोंको दूर करता है ॥ १९ ॥

पश्चिमोत्तानासनम् ।

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ संन्यस्तभालश्चितियुग्ममध्ये।
यत्नेन पादौ च धृतौ कराभ्यां योगीन्द्रपीठं पश्चिमोत्तानमाहुः ॥

दोनों चरणोंको पृथ्वीमें दण्डकी समान सरलभावसे फैला कर, यत्न करके दोनों हाथोंसे दोनों पैरोंको पकड कर जङ्घाओंमें शिरको धर देय, इसका नाम पश्चिमोत्तानासन है* ॥ २० ॥

मत्स्येन्द्रासनम् ।

उदरं पश्चिमाभासं कृत्वा तिष्ठति यत्नतः ।
नम्राङ्गवामपादं हि दक्षजानूपरि न्यसेत् ॥
तत्र याम्यं कूर्परं च याम्ये करे च वक्त्रकम् ।
भ्रुवोर्मध्ये गतां दृष्टिं पीठं मात्स्येन्द्रमुच्यते ॥ २१ ॥

---

* इस पश्चिमोत्तानासनका दूसरी संहिताओंमें उग्रासन नामसे वर्णन है, दूसरे शास्त्रोंमें यह आसन इस प्रकारसे लिखा है–
"विस्तार्य पादयुगुलं परस्परमसंयुतम् ।
स्वहस्ताभ्यां दृढं धृत्वा जानूपरि शिरो न्यसेत् ॥
उग्रासनमिदं प्रोक्तं भवेदनिलदीपनम् ।
देहावसादनाशनं पश्चिमोत्तानसंज्ञकम् ॥
य एतदासनं श्रेष्ठं प्रत्यहं साधयेत्सुधीः ।
वायुः पश्चिममार्गेण तस्य चरति निश्चितम् ॥
एतदभ्यासकानां च सर्वसिद्धिश्च जायते ।
तस्माद्योगी यत्नतो वै साधयेत्सिद्धिसाधकः ॥
गोपनीयं प्रयत्नेन न देयं यस्य कस्यचित् ।
येन शीघ्रं मरुत्सिद्धिर्भवेद् दुःखौघहारिणी ॥"
अर्थात्–दोनों चरणोंको अलग २ फैलाकर दोनों हाथोंसे मजबूतीके साथ पकड़ लेय और अपने शिरको दोनों जङ्घाओं पर धर देय, इस आसनका नाम उग्रासन है, इस आसनके अभ्याससे जठरानल बढ़ जाता है और शरीरकी अवसन्नता (सुस्ती) दूर होजाती है, इसको ही पश्चिमोत्तानासन भी कहते हैं। जो सुबुद्धि साधक इसका प्रतिदिन अभ्यास करते हैं उनकी वायु पश्चिममार्गसे चलने लगती है। इसका अभ्यास करनेसे सकल सिद्धियें प्राप्त होजाती हैं, इसलिये योगी यत्नपूर्वक इसका साधन करते हैं, यह अतीव गोपनीय है, साधारण मनुष्योंके सामने इसको प्रकट नहीं करना चाहिये, इसके द्वारा प्राणायाम सिद्धि होती है और उस सिद्धिसे समस्त दुःख दूर होजाते हैं।

पेटका पीठको समान सरलभावसे रखकर यत्नपूर्वक बायें चरणको नमा कर दाहिनी जाँघ पर रक्खे, उस पर दाहिनी कोन्ही रक्खे और दाहिने हाथ पर मस्तकको रख दोनों भौंके बीचके स्थलको देखे, इसका नाम मत्स्येन्द्रासन है ॥ २१ ॥

गोरक्षासनम् ।

जानूर्वोरन्तरे पादौ उत्तानाव्यक्तसंस्थितौ ।
गुल्फौ चाच्छाद्य हस्ताभ्यामुत्तानाभ्यां प्रयत्नतः ॥
कंठसङ्कोचनं कृत्वा नासाग्रमवलोकयेत् ।
गोरक्षासनमित्याहुर्योगिनां सिद्धिकारणम् ॥२२॥

दोनों घुटने और जाँघोंके बीचमें चरणोंको उत्तान कर गुप्त भावसे रक्खे और दोनों हाथोंसे दोनों एड़ियोंको पकडलेय, फिर कण्ठको सकोड कर नासिकाके अग्रभागको देखे, इसका नाम गोरक्षासन है और यह योगियोंको सिद्धि देनेवाला है ॥ २२ ॥

उत्कटासनम् ।

अङ्गुष्ठाभ्यामवष्टभ्य धरां गुल्फे च खे गतौ ।
तत्रोपरि गुदं न्यस्य विज्ञेयमुत्कटासनम् ॥ २३ ॥

चरणोंके दोनों अँगूठोंको पृथ्वीमें टेककर दोनों एड़ियोंको निरालम्ब कर ऊपरको उठा देय और उन दोनों एड़ियों पर गुदाको रक्खे, इसको उत्कटासन कहते हैं ॥ २३ ॥

सङ्कटासनम् ।

वामपादं चितेर्मूलं संन्यस्य धरणीतले ।
पाददण्डेन याम्येन वेष्टयेद्वामपादकम् ।
जानुयुग्मे करौ युग्ममेतत्तु सङ्कटासनम् ॥ २४ ॥

बायाँ पैर और घुटुआ पृथ्वीमें रखकर दायें पैरसे बायें चरणको लपेट दोनों घुटुओं पर दोनों हाथोंको रक्खे, इसका नाम संकटासन है ॥ २४ ॥

मयूरासनम् ।

धरामवष्टभ्य करयोस्तलाभ्यां,
तत्कूर्परे स्थापितनाभिपार्श्वम् ।
उच्चासनो दण्डवदुत्थितः खे,
मायूरमेतत् प्रवदन्ति पीठम् ॥ २५ ॥

दोनों हाथोंकी हथेलियोंको पृथ्वीमें टेककर दोनों कोन्हियों को नाभिके पार्श्वों (बगलों) में लगालेय और मुक्तपद्मासनकी समान दोनों चरणोंको पीछेकी ओर ऊपरको उठा दण्डेकी समान खड़ा करदेय, इसको मयूरासन कहते हैं ॥ २५ ॥

कुक्कुटासनम् ।

पद्मासनं समासाद्य जानूर्वोरन्तरे करौ ।
कूर्पराभ्यां समासीनो मञ्चस्थः कुक्कुटासनम् ॥ २६ ॥

मुक्तपद्मासनसे बैठकर दोनों जाँघ और घुटनोंके मध्यमें दोनों हाथोंको करके दोनों हाथोंकी कोन्हियोंसे मञ्च (पलङ्ग) की समान उठने बैठनेको कुक्कुटासन कहते हैं ॥ २६ ॥

कूर्मासनम् ।

गुल्फौ च वृषणस्याधो व्युत्क्रमेण समाहितौ ।
ऋजुकायशिरोग्रीवं कूर्मासनमितीरितम् ॥ २७ ॥

अण्डकोषोंके नीचे दोनों एड़ियोंको उलट पलट कर रख देह, शिर और गर्दनको सीधा करके बैठनेका नाम कूर्मासन है २७

उत्तानकूर्मासनम् ।

कुक्कुटासनबन्धस्थं कराभ्यां धृतकन्धरम् ।
पीठं कूर्मवदुत्तानमेतदुत्तानकूर्मकम् ॥ २८ ॥

कुक्कुटासन करके दोनों हाथोंसे कन्धोंको पकड़ ले और कछुएकी समान उत्तान होजाय इसको उत्तानकूर्मासन कहते हैं २८

उत्तानमण्डूकासनम् ।

मण्डूकासनमध्यस्थं कूर्पराभ्यां धृतं शिरः ।

एतद्भेकवदुत्तानमेतदुत्तानमण्डूकम् ॥ २९ ॥

मण्डूकासन करके हाथोंकी कोनियोंसे मस्तकको धारण करके मण्डूककी समान उत्तानभावसे स्थित होनेका नाम उत्तानमण्डूकासन है ॥ २९ ॥

वृक्षासनम् ।

वामोरुमूलदेशे च याम्यपादं निधाय तु ।
तिष्ठेत्तु वृक्षवद्भूमौ वृक्षासनमिदं विदुः ॥ ३० ॥

दाहिना चरण बाईं जाँघकी जड़में रखकर वृक्षकी समान भूमिमें तनाहुआ खड़ारहे, इसको वृक्षासन कहते हैं ॥ ३० ॥

मण्डूकासनम् ।

पादतलौ पृष्ठदेशे अंगुष्ठे द्वे च संस्पृशेत् ।
जानुयुग्मं पुरस्कृत्य साधयेन्मण्डूकासनम् ॥ ३१ ॥

दोनों चरण पीठकी ओर लेजाकर उनके दोनों अँगूठोंको मिलावे और दोनों घुटनोंको आगे रक्खे, इसको मण्डूकासन कहते हैं ॥ ३१ ॥

गरुडासनम् ।

जङ्घोरुभ्यां धरां पीड्य स्थिरकायो द्विजानुना ।
जानूपरि करं युग्मं गरुडासनमुच्यते ॥ ३२ ॥

दोनों जाँघ और दोनों घुटनोंसे पृथ्वीको दबावे और शरीरको स्थिर रख कर दोनों घुटनों पर दोनों हाथ रख कर बैठे, इसको गरुडासन कहते हैं ॥ ३२ ॥

वृषासनम् ।

याम्यगुल्फे पायुमूलं वामभागे पदेतरम् ।
विपरीतं स्पृशेद्भूमिं वृषासनमिदं भवेत् ॥ ३३ ॥

दाहिनी एड़ी पर गुदाको रक्खे और उसके वामभागमें दूसरे पैरको उलट कर रक्खे और पृथ्वीको स्पर्श करे, इसको वृषासन कहते हैं ॥ ३३ ॥

शलभासनम्।

अधास्यः शेते करयुग्मं वक्षे
भूमिमवष्टभ्य करयोस्तलाभ्याम्।
पादौ च शून्ये च वितस्ति चोर्ध्वम्
वदन्ति पीठं शलभं मुनीन्द्राः ॥ ३४ ॥

नीचेको मुख करके लेटे और दोनों हाथोंको वक्षःस्थलके नीचे रखकर हथेलियोंको पृथ्वी पर टेके और दोनों चरणोंको आकाशमें विलस्त भर ऊपरको उठा देय, इसको शलभासन कहते हैं ॥ ३४ ॥

मकरासनम्।

अधास्यः शेते हृदयं निधाय
भूमौ च पादौ च प्रसार्यमाणौ।
शिरश्च धृत्वा करदण्डयुग्मे
देहाग्निकारं मकरासनं तत् ॥ ३५ ॥

नीचेको मुख करके लेटे और हृदयको पृथ्वीसे लगा पैरोंको फैला देय और दोनों हाथोंसे मस्तकको पकड लेय इसका नाम मकरासन है और यह अग्निको प्रदीप्त करनेवाला है ॥ ३५ ॥

उष्ट्रासनम्।

अधास्यः शेते पदयुग्मव्यस्तं
पृष्ठे निधायापि धृतं कराभ्याम्।
आकुञ्चयेत् सम्यगुदरास्यगाढम्
उष्ट्रञ्च पीठं योगिनो वै वदन्ति॥३६॥

नीचेको मुख करके लेटे और पैरोंको उलट कर पीठ पर लावे, फिर दोनों हाथोंसे उन पैरोंको पकड कर मुख और पेट को दृढतासे सकोडे, इसको उष्ट्रासन कहते हैं ॥ ३६ ॥

भुजङ्गासनम्।

अंगुष्ठनाभिपर्यन्तमधोभूमौ विनिन्यसेत्,
करतलाभ्यां धरां धृत्वा ऊर्ध्वं शीर्षं फणीव हि।

देहाग्निर्वर्धते नित्यं सर्वरोगविनाशनम्,
जागर्ति भुजगी देवी साधनात् भुजगासनम् ॥३७॥

नाभिसे लेकर चरणके अंगूठे तकके शरीरको नीची पृथ्वी पर रक्खे और हथेलियोंको पृथ्वी पर टेक सर्पकी समान शिरको ऊँचा करे, इसको भुजङ्गासन कहते हैं, इससे जठराग्नि दिन २ बढती है और सब रोग दूर होजाते हैं और इस आसनका अभ्यास करने पर कुण्डलिनी शक्ति जाग उठती है ॥ ३७ ॥

योगासनम् ।

उत्तानौ चरणौ कृत्वा संस्थाप्य जानुनोपरि ।
आसनोपरि संस्थाप्य उत्तानं करयुग्मकम् ॥
पूरकैर्वायुमाकृष्य नासाग्रमवलोकयेत् ।
योगासनं भवेदेतद्योगिनां योगसाधनम् ॥ ३८ ॥

दोनों चरण उत्तान (चित्त) करके दोनों घुटनोंके ऊपर रक्खे और दोनों हाथोंको उत्तान (चित्त) करके आसन पर रक्खे फिर पूरकके द्वारा वायुको खैंचकर कुंभक करता हुआ नासिकाके अग्रभागको देखे, इसका नाम योगासन है, योग-साधन करते समय योगियोंको इस आसनका अभ्यास अवश्य करना चाहिये ॥ ३८ ॥

॥ द्वितीयोपदेश समाप्त ॥

अथ तृतीयोपदेशः

मुद्राकथनम्

घेरण्ड उवाच ।

महामुद्रा नभोमुद्रा उड्डीयानं जलन्धरम् ।
मूलबन्धं महाबन्धं महावेधश्च खेचरी ॥ १ ॥

विपरीतकारिणी योनिर्वज्रोली शक्तिचालिनी।
ताडागी माण्डवी मुद्रा शांभवी पञ्चधारणा ॥२॥
अश्विनी पाशिनी काकी मातङ्गी च भुजङ्गिनी॥
पञ्चविंशति-मुद्रा वै सिद्धिदाश्चेह योगिनाम्॥ ३ ॥

घेरण्ड ऋषिने कहा, कि–महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयान, जलन्धर, मूलबन्ध, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, विपरीतकरिणी, योनि, वज्रोली, शक्तिचालिनी, ताडागी, माण्डवी, शाम्भवी, पञ्चधारणा (अधोधारणा वा पार्थिवीधारणा, आम्भसीधारणा, वैश्वानरीधारणा, वायवीधारणा, नभोधारणा वा आकाशी-धारणा) अश्विनी, पाशिनी, काकी, मातङ्गी और भुजङ्गिनी, ये पच्चीस मुद्रायें योगियोंको सिद्धि देनेवाली हैं※ ॥ १॥२॥३ ॥

※ रुद्रयामलमें लिखा है, कि–

"सशैलवनधात्रीणां यथाधारोऽहिनायकः। सर्वेषां हठतन्त्राणां तथाधारो हि कुण्डली॥ सुप्ता गुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली। तदा पद्मानि सर्वाणि भिद्यन्ते ग्रन्थयोपि च॥ प्राणस्य शून्यपदवी तदा राजपथायते। यदा चित्तं निरालम्बं तदा कालस्य वञ्चनम्॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रबोधयितुमीश्वरीम्। ब्रह्मरन्ध्रमुखे सुप्तां मुद्राभ्यासं समाचरेत्॥" ॥ ८६ ॥

देहके भीतर कुलकुण्डलिनी शक्ति निद्रामें पड़ीहुई है, सर्पराज शेषनाग जैसे वन, पहाड़ आदिसे युक्त पृथिवीके एकमात्र आधार हैं तैसे ही यह कुण्डलिनी शक्ति भी समस्त हठतन्त्र (योग) की आ-धार है, इस कुण्डलिनी शक्तिके जागनेपर देहस्थ षट्चक्रोंके सकल पद्म और ग्रन्थियोंका भेद होजाता है, अर्थात् ये खुलजाते हैं तब प्राणवायु सुषुम्नारन्ध्रमें जाकर आनन्दपूर्वक गमनागमन करसकता है, अब मन अवलम्बके विना भी स्थिर रहने लगता है तब अमरत्व वा मुक्ति मिलती है. इसलिये इस कुण्डलिनी शक्तिको जगाना उचित है और इस शक्तिको जगानेके लिये मुद्राका अभ्यास करना आव-श्यक है॥

मुद्राफलकथनम् ।

मुद्राणां पटलं देवि कथितं तव संन्निधौ ।
येन विज्ञातमात्रेण सर्वसिद्धिः प्रजायते ॥ ४ ॥
गोपनीयं प्रयत्नेन न देयं यस्य कस्यचित् ।
प्रीतिदं योगिनां चैव दुर्लभं मरुतामपि ॥ ५ ॥

महादेवने कहा कि-हे देवि ! मैंने तुमसे सब मुद्राओंके नाम कहे, इनके ज्ञानमात्रसे सब सिद्धियोंका लाभ होजाता है, ये परमगुह्य हैं, प्रत्येकको यह नहीं देनी चाहियें, ये मुद्रायें योगियोंको परमप्रिय हैं और देवताओंको भी दुर्लभ हैं * ॥ ४-५ ॥

महामुद्रा ।

पायुमूलं वामगुल्फे संपीड्य दृढयत्नतः ।
याम्यपादं प्रसार्याथ करे धृतपदांगुलः ॥ ६ ॥
कंठसंकोचनं कृत्वा भ्रुवोर्मध्ये निरीक्षयेत् ।
महामुद्राभिधा मुद्रा कथ्यते चैव सूरिभिः ॥ ७ ॥

"गुह्यप्रदेशको दृढतापूर्वक यत्नके साथ बाईं एडीसे दबावे और दाहिने पैरको फैलाकर हाथसे पैरकी अँगुलीको पकड़े और कण्ठको सकोड़ कर भौंके बीचके स्थलको देखे, इसको ही विद्वान् महामुद्रा कहते हैं * ॥ ६-७ ॥

---

* मुद्राओंका फल रुद्रयामलमें भी यही लिखा है, यथा—
"मुद्राणां दशकं ह्येतद्व्याधिमृत्युविनाशनम् । देवेशि कथितं दिव्यमष्टैश्वर्यप्रदायकम्॥ वल्लभं योगिनामेतद् दुर्लभं मरुतामपि । गोपनीयं प्रयत्नेन यथा रत्नकरण्डकम्॥कस्यचिन्नैव वक्तव्यं कुलस्त्री सुरतं यथा॥"
ये दश मुद्रायें व्याधि और रोगोंको नष्टकरनेवाली हैं, और मृत्युको हटानेवाली हैं, ये अणिमा आदि आठ ऐश्वर्योंको देती हैं, ये योगियोंको परमप्रिय हैं और देवताओंकोभी कठिनतासे मिलती हैं, इनको रत्नकरण्डक (रत्न रखनेका पिटारा) की समान यत्नपूर्वक छिपाकर रक्खे, किसीके सामने प्रकाशित न करे ।

* रुद्रयामलमें महामुद्राका लक्षण इस प्रकार किया है—
पादमूलेन वामेन योनिं सम्पीड्य दक्षिणं ।

महामुद्राफलकथनम् ।

क्षयकासं गुदावर्तं प्लीहाजीर्णं ज्वरं तथा ।
नाशयेत्सर्वरोगांश्च महामुद्रातिसेवनात् ॥ ८ ॥

इस महामुद्राका अति अभ्यास करनेसे क्षय, कास, गुदावर्त, प्लीहा, अजीर्ण, ज्वर आदि सब रोग दूर होजाते हैं * ॥८॥

पादं प्रसारितं कृत्वा कराभ्यां धारयेद् दृढम् ॥
कण्ठे वदनं समारोप्य धारयेद्वायुमूर्ध्वतः ।
यथा दण्डाहतः सर्पो दण्डाकारः प्रजायते ॥
ऊर्ध्वी भूता तथा शक्तिः कुण्डली सहसा भवेत् ।
तदा सा मरणावस्था जायते द्विपुटाश्रिता ॥
ततः शनैः शनैरेव रेचयेत्त न वेगतः ।
इयं खलु महामुद्रा तव स्नेहात्प्रकाश्यते ॥

अर्थात्—योनिप्रदेशको बाईं एडीसे दबाकर दक्षिण चरणको फैला दोनों हाथोंसे दृढतासे पकड़ मुखको कण्ठमें को सकोड़ कुम्भक कर वायुको रोके, इस मुद्राका अभ्यास करने पर दण्डसे पिटने पर सर्प जैसे दण्डकी समान खड़ा होजाता है तैसी ही आकृति होजाती है और इसीप्रकार कुण्डलिनी भी सरल भाव धारण कर लेती है, खड़ी होजाती है। फिर इस कुम्भकसे भरेहुए वायुको धीरे २ छोड़े, इसका ही नाम महामुद्रा है।

* दूसरी संहितामें लिखा है, कि—

यदि हतभाग्य व्यक्ति भी इस महामुद्राको करे तो वह भी सिद्धिलाभमें समर्थ होजाता है, इस मुद्राका अभ्यास करनेसे देहस्थ नाडीसमूह परिचालित होता है और जीवनीशक्तिस्वरूप वीर्य स्तंभित होने लगता है और यह वीर्य जीवनको बलात् खैंचकर स्थिर रखता है, इस महामुद्राके प्रभावसे सम्पूर्ण पाप और रोग दूर होते हैं और देहमें सुन्दरता आने लगती है, जरा और मरण दूर होजाते हैं और वाञ्छित फल तथा आनन्द प्राप्त होता है, इस मुद्राके प्रसादसे जितेन्द्रियता होने लगती है, यह मुद्रा परम गुह्य है, योगी इस मुद्राके प्रभावसे अपार संसारके पार होते हैं और इस मुद्राका साधन करनेसे जिस २ कामनाको करता है वह २ कामना सफल होती है। यथा—

नभोमुद्रा ।

यत्र यत्र स्थितो योगी सर्वकार्येषु सर्वदा ।
ऊर्ध्वजिह्वः स्थिरो भूत्वा धारयेत्पवनं सदा ॥
नभोमुद्रा भवेदेषा योगिनां रोगनाशिनी ॥ ६ ॥

अनेन विधिना योगी मन्दभाग्योऽपि सिद्ध्यति ।
सर्वासामेव नाडीनां चालनं विन्दुमारणम् ॥
जारणन्तु कषायस्य पातकानां विनाशनम् ।
सर्वरोगोपशमनं जठराग्निविवर्धनम् ॥
वपुषः कान्तिममलां जरामृत्युविनाशनम् ।
वाञ्छितार्थफलं सौख्यमिन्द्रियाणां च मारणम् ॥
एतदुक्तानि सर्वाणि योगारूढस्य योगिनः ।
भवेदभ्यासतोऽवश्यं नात्र कार्या विचारणा ॥
गोपनीया प्रयत्नेन मुद्रेयं सुरपूजिते ।
यान्तु प्राप्य भवाम्भोधेः पारं गच्छन्ति योगिनः ॥
मुद्रा कामदुघा ह्येषा साधकानां मयोदिता ।
गुप्ताचारेण कर्तव्या न देया यस्य कस्यचित् ॥

रुद्रयामलमें लिखा है, कि—

महाक्लेशादयो दोषा क्षीयन्ते मरणादयः ।
महामुद्रा तु तेनैव समाख्याता महेश्वरि ॥
चन्द्राङ्गेन समभ्यस्य सूर्याङ्गेन समभ्यसेत् ।
यावत्सङ्ख्या भवेत्तुल्या ततो मुद्रां विसर्जयेत ॥
न हि पथ्यमपथ्यं वा रसाः सर्वेऽपि नीरसाः ।
अपि भुक्तं विषं घोरं पीयूषमपि जीर्यति ॥
क्षयकुष्ठगुदावर्तगुल्मप्लीहपुरोगमाः ।
तस्य दोषाः क्षयं यान्ति महामुद्रां च योऽभ्यसेत् ॥
कथितेयं महामुद्रा जरामरणनाशिनी ।
गोपनीया प्रयत्नेन न देया यस्यकस्यचित् ॥

हे महादेवि ! जो इस महामुद्राका आचरण करते हैं, बड़े २ क्लेश और मरण उन पर आक्रमण करनेको समर्थ नहीं होते, इस मुद्राका चन्द्राङ्गके द्वारा अभ्यास करे फिर सूर्याङ्गके द्वारा अभ्यास करे । जो इस मुद्राका आचरण करते हैं, वे क्या पथ्य और क्या अपथ्य

योगी निरन्तर सब कामोंमें स्थिर और ऊर्ध्वजिह्व होकर कुम्भकके द्वारा वायुको रोके, इसको ही नभोमुद्रा कहते हैं, इस मुद्रासे योगियोंके समस्त रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ९ ॥

उड्डीयानबन्धः ।

उदरे पश्चिमं तानं नाभेरूर्ध्वन्तु कारयेत् ।
उड्डीयानं कुरुते यत्तदविश्रान्तं महाखगः ।
उड्डीयानं त्वसौ बन्धो मृत्युमातंगकेसरी ॥ १० ॥

नाभिके ऊपरके भाग और पश्चिमद्वारको उदरके समभावमें सकोड़े, अर्थात् उदरके अधोभागमें स्थित गुह्यादिचक्रस्थित सब नाड़ियोंको नाभिके ऊपरको उठावे इसका ही नाम उड्डीयानबंध है, यह उड्डीयानबंध मृत्युरूप हाथीके लिये सिंहकी समान है ॥ १० ॥

समग्राद् बन्धनाद्ध्येतदुड्डीयानं विशिष्यते ।
उड्डीयाने समभ्यस्ते मुक्तिः स्वाभाविकी भवेत् ११

जो २ मुद्राबन्ध कहे हैं, उनमें उड्डीयानबंध सबमें प्रधान है, इसका अभ्यास होने पर मुक्ति अनायास ही होजाती है ÷ ११

और क्या सब प्रकारके विष आदि जो कुछ भी भक्षण करें, उनको ये सब अमृतकी समान जीर्ण हो (पच) जाते हैं, इस मुद्राके प्रसाद से क्षय, कुष्ठ, गुदावर्त, प्लीहा, ववासीर आदि रोग नष्ट होजाते हैं, यह मुद्रा बुढापे और मृत्युको दूर भगाती है, यह अतीव गुह्य है, इसको जनसाधारणको बताना अनुचित है ॥

÷ दूसरे शास्त्रोंमें उड्डीयानका फल इस इसप्रकार लिखा है, कि—

नित्यं यः कुरुते योगी चतुर्वारं दिने दिने ।
तस्य नाभेस्तु शुद्धिः स्याद्येन शुद्धो भवेन्मरुत् ॥
षण्मासमभ्यसेद्योगी मृत्युं जयति निश्चितम् ।
तस्योदराग्निर्ज्वलति रसवृद्धिश्च जायते ॥
रोगाणां संक्षयश्चापि योगिनां भवति ध्रुवम् ।
गुरोर्लब्ध्वा तु यत्नेन साधयेच्च विचक्षणः ॥
निर्जने सुस्थिते देशे बन्धं परमदुर्लभम् ।

जालन्धरबन्धम् ।

कण्ठसङ्कोचनं कृत्वा चिबुकं हृदये न्यसेत् ।
जालन्धरे कृते बन्धे षोडशाधारबन्धनम् ।
जालधरं महामुद्रा मृत्योश्च क्षयकारिणि ॥ १२ ॥

कण्ठको सकोड़ कर हृदय पर ठोढ़ीको रखनेका नाम जालंधरबन्ध है, इससे सोलह प्रकारका आधारबन्ध होसकता है और यह मृत्युको पराजित करता है + ॥ १२ ॥

अर्थात्—योगयुक्त व्यक्ति प्रतिदिन वार वार इस उड्डीयानबन्ध का आचरण करे तो उसकी नाभिशुद्धि और मरुत्शुद्धि होसकती है छः महीने तक इस बन्धका अभ्यास करने पर निःसन्देह मृत्युको पछाड़ा जासकता है, जो मनुष्य इसका आचरण करते हैं उनकी जठराग्नि प्रदीप्त होजाती है और शरीरमें पुष्टिकर रसका सञ्चार होने लगता है इसके प्रसादसे योगियोंके रोग नष्ट होजाते हैं, सुबुद्धि साधक गुरुसे उपदेश पाकर यत्नपूर्वक निर्जन स्थानमें बैठकर इस दुर्लभ बन्धका अभ्यास करे।

दत्तात्रेयसंहितामें भी लिखा है, कि—

अभ्यसेद्यस्तु सततं यो वृद्धोऽपि तरुणायते ।
षण्मासमभ्यसेन्मृत्युं जयत्येव न संशयः ॥

अर्थात्—उड्डीयानबन्धका अभ्यास करने पर वृद्ध पुरुष भी तरुण बन जाता है, जो इसका छः महीने पर्यन्त अभ्यास कर लेता है यह साधक अवश्य ही मृत्युको पराजित करसकता है ॥

+ महयामलमें लिखा है, कि—

कण्ठमाकुञ्च्य हृदये स्थापयेच्चिबुकं दृढम् ।
बन्धो जालन्धराख्योऽयममृताप्ययकारकः ॥

अर्थात्—कण्ठको सकोड़ कर ठोढ़ीको दृढ़ताके साथ हृदय पर रक्खे, इसको जालन्धरबन्ध कहते हैं, इसके द्वारा शरीरस्थ अमृत निरन्तर परिपूर्ण रहता है.

दूसरी संहिताओंमें भी लिखा है, कि—

बद्धा गलशिराजालं हृदये चिबुकं न्यसेत् ।
बन्धो जालन्धरो प्रोक्तो देवानामपि दुर्लभः ॥

सिद्धं जालन्धरं बन्धं योगिनां सिद्धिदायकम् ।
षण्मासमभ्यसेद्यो हि स सिद्धो नात्र संशयः ॥१३॥

यह जालन्धरबन्ध सिद्ध होने पर योगियोंको सिद्धि देता है, जो इसका छः मास तक अभ्यास करता है, वह वास्तवमें सिद्ध होजाता है * ॥ १३ ॥

मूलबन्धनम् ।

पार्ष्णिना वामपादस्य योनिमाकुञ्चयेत्ततः ।
नाभिग्रन्थिं मेरुदण्डे संपीड्य यत्नतः सुधीः ॥ १४ ॥
मेढ्रं दक्षिणगुल्फे तु दृढबन्धं समाचरेत् ।
जराविनाशिनी मुद्रा मूलबन्धो निगद्यते ॥ १५ ॥

बाईं एडीसे गुह्यप्रदेशको सकोड़े और यत्नके साथ मेरुदण्ड में नाभिग्रंथिको लगाकर दबावे और दाहिनी एडीसे उपस्थको दृढताके साथ दाब कर रक्खे, इसको मूलबन्ध कहते हैं, इस मुद्रासे बुढ़ापा दूर होजाता है + ॥ १४-१५ ॥

अर्थात्-गलेकी नसोंको बाँध (सकोड़) कर ठोड़ीको हृदय पर रख कुम्भक करनेको जालन्धरबन्ध कहते हैं, यह देवताओंको भी दुर्लभ है ।

* शास्त्रान्तरमें लिखा है, कि-जो साधक इस बन्धके प्रसादसे सहस्रारकमलमेंसे निकले हुए अमृतको नीचे लाकर अपने आप पीता है उसको अमरत्व मिलता है, यह मुद्रा सिद्धिप्रद है सिद्धि-कामी योगियोंको इसका सदा अभ्यास करना चाहिये । यथा-

बन्धेनानेन पीयूषं स्वयं पिबति बुद्धिमान् ।
अमरत्वं च संप्राप्य मोदते भुवनत्रये ॥
जालन्धरबन्ध एष सिद्धानां सिद्धिदायकः ।
अभ्यासः क्रियते नित्यं योगिना सिद्धिमिच्छता ॥

+ दूसरे ग्रन्थोंमें मूलबन्ध इसप्रकार लिखा है-

पादमूलेन सम्पीड्य गुदमार्गं सुयन्त्रितम् ।
बलादपानमाकृष्य क्रमादूर्ध्वं समभ्यसेत् ॥
कल्पितोऽयं मूलबन्धो जरामरणनाशनः ।

संसारसमुद्रं तर्तुमभिलषति यः पुमान् ।
विरले सुगुप्तो भूत्वा मुद्रामेनां समभ्यसेत् ॥१६॥
अभ्यासाद्बन्धनस्यास्य मरुत्सिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ।
साधयेद्यत्नतो तर्हि मौनी तु विजितालसः ॥ १७ ॥

जो भवसागरके पार जाना चाहते हैं वे निर्जनमें छुपा कर इस मुद्राका अभ्यास करें इस मूलबन्धका अभ्यास करनेसे निश्चय ही मरुत्सिद्धि होसकती है, अतएव साधक आलस्यको त्याग मौन धारण कर यत्नके साथ इसकी साधना करें + १६-१७

महाबन्धः।

वामपादस्य गुल्फे तु पायुमूलं निरोधयेत् ।
दक्षपादेन तद् गुल्फं संपीड्य यत्नतः सुधीः ॥१८॥
शनैः शनैश्चालयेत् पार्ष्णिं योनिमाकुञ्चयेच्छनैः ।
जालन्धरे धारयेत्प्राणं महाबन्धो निगद्यते ॥ १९ ॥

बाईं एड़ीसे पायुमूल (गुदा) का निरोध करके दाहिने पैरसे यत्नपूर्वक बाईं एड़ीको दबाता हुआ, धीरे २, गुह्यदेशको चलावे और धीरे २ गुह्यदेशको सकोड़े और जालन्धरबन्धसे प्राणवायु को धारण करे, इसका नाम महाबन्ध है *॥ १८ ॥ १९ ॥

अर्थात् गुह्यप्रदेशको गुल्फ (एडी) से दबाकर भलीप्रकार बँधे हुए अपान वायुको बलके साथ धीरे २ ऊपरको खैंचे, इसका नाम मूलबन्ध है, यह बुढ़ापे और मृत्युको दूर करता है।

+ इस मूलबन्धसे योनिमुद्रा सिद्ध होती है, इसके प्रसादसे साधक आकाशमें उड़ सकता है।

* दूसरे शास्त्रोंमें यह मुद्राबन्ध इसप्रकार है-

बाईं जाँघ पर दाहिना चरण फैला योनि और गुह्यप्रदेशको सकोड़ अपान वायुको ऊर्ध्वगामी कर नाभिस्थ समान-वायुके साथ मिलावे और हृदस्थ प्राणवायुको अधोमुख करके प्राण और अपान-वायु इन दोनों वायुओंके साथ उदरमें कुम्भक रूपसे करे, इसका नाम महाबन्ध है। यथा-

महाबन्धः परो बन्धो जरामरणनाशनः ।
प्रसादादस्य बन्धस्य साधयेत्सर्ववाञ्छितम् ॥ २० ॥

यह महाबन्ध नामक मुद्रा सकल मुद्राओंमें प्रधान मानी गई है, यह जरा मृत्युको दूर करती है, इसके प्रभावसे सकल मनोरथ सिद्ध किये जासकते हैं + ॥ २० ॥

महावेधः

रूपयौवनलावण्यं नारीणां पुरुषं विना ।
मूलबन्धमहाबन्धौ महावेधं विना तथा ॥ २१ ॥
महाबन्धं समासाद्य उड्डीनकुम्भकं चरेत् ।
महावेधः समाख्यातो योगिनां सिद्धिदायकः ॥ २२ ॥

पुरुषके विना जैसे रमणीका रूप, यौवन और लावण्य निष्फल हैं, ऐसे ही महावेधके विना मूलबन्ध और महाबन्ध निष्फल हैं पहिले महाबन्ध मुद्राका अनुष्ठान कर उड्डीयानबंध कर कुंभकसे वायुको रोके, इसका नाम महावेध है, महावेधके द्वारा योगी सिद्धि पाते हैं * ॥ २१ ॥ २२ ॥

ततः प्रसारितः पादो विन्यस्य तमूरूपरि ।
गुदयोनिं समाकुञ्च्य कृत्वा चापानमूर्ध्वगम् ॥
योजयित्वा समानेन कृत्वा प्राणमधोमुखम् ।
बन्धयेदुदरेऽत्यर्थं प्राणापानाभ्यां यः सुधीः ।
कथितोऽयं महाबन्धः सिद्धिमार्गप्रदर्शकः ॥

+ यह मुद्रा सिद्ध होने पर शरीर पुष्ट होता है और हड्डियाँ मजबूत होजाती हैं, इसके प्रसादसे साधकके सब मनोरथ सिद्ध होजाते हैं इस विषयका शिवसंहितामें अधिक वर्णन किया है ।

* महावेध दूसरे प्रकारसे भी होता है—
अपानप्राणयोरैक्यं कृत्वा त्रिभुवनेश्वरि ।
महावेधस्थितो योगी कुक्षिमापूर्य वायुना ॥
स्फिचौ सन्ताडयेद्धीमान् वेधोऽयं समुदाहृतः ।

महाबन्धमूलबन्धौ महावेधसमन्वितौ ।
प्रत्यहं कुरुते यस्तु स योगी योगवित्तमः ॥ २३ ॥
न च मृत्युभयं तस्य न जरा तस्य विद्यते ।
गोपनीयः प्रयत्नेन वेधोऽयं योगिपुंगवैः ॥ २४ ॥

जो साधक प्रतिदिन महावेधसमन्वित महाबन्ध और मूलबंध का आचरण करते हैं वे योगी योगियोंमें मुख्य माने जाते हैं, मृत्यु या बुढ़ापा उनके ऊपर आक्रमण नहीं कर सकता। यह परम गुह्य है योगिपुङ्गवोंको इसे गुप्त रखना चाहिये + २३-२४

खेचरीमुद्रा ।

जिह्वाधो नाडीं संछिन्नां रसनां चालयेत् सदा ।
दोहयेन्नवनीतेन लोहयन्त्रेण कर्षयेत् ॥ २५ ॥
एवं नित्यं समभ्यासाल्लम्बिका दीर्घतां व्रजेत् ।
यावद् गच्छेद् भ्रुवोर्मध्ये तथा गच्छति खेचरी २६
रसनां तालुमध्ये तु शनैश्शनैः प्रवेशयेत् ।
कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा ॥
भ्रुवोर्मध्ये गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥ २७ ॥

जिह्वाके नीचे जिह्वा और जिह्वाकी जड़को मिलानेवाली जो नाड़ी है उसको छेदता (काटता) हुआ निरन्तर रसना के नीचे रसना (जिह्वा) के अग्रभागको परिचालित करे और रसनाको मक्खनसे दुह कर चीमटेसे खींचा करे । प्रतिदिन ऐसा करनेसे जिह्वा बड़ी होजाती है, क्रम क्रमसे अभ्यासके द्वारा जिह्वाको इतनी लम्बी करे कि-वह भौंके मध्य

अर्थात्-अपान और प्राणवायुकी एकता करके कुम्भकसे उदरमें वायुको भरले और दोनों नितम्बोंको ताड़ित करता रहे, इसका नाम महावेध है ।

+ इसका अभ्यास करनेसे वायुसिद्धि होती है, तब जरा मरण आदिका नाश होजाता है, इसका विशेष वर्णन शिवसंहितामें है ।

तक पहुँच जाय, जिह्वाको क्रमशः तालुके मध्यमें लेजाय। तालुके बीचके गड्ढेका नाम कपालकुहर है। जिह्वाको इस कपालकुहरके मध्यमें ऊपरको उलटी करके लेजाय और दोनों भौंके मध्यस्थलको देखता रहे। इसको खेचरीमुद्रा कहते हैं *॥ २५॥ २६॥ २७॥

न च मूर्च्छा क्षुधा तृष्णा नैवालस्यं प्रजायते।
न च रोगो जरा मृत्युर्देवदेहं प्रपद्यते ॥ २८ ॥

जो इस खेचरीमुद्राका अभ्यास करते हैं, उनको मूर्च्छा, क्षुधा और पिपासा कुछ भी कष्ट नहीं देती है, आलस्य उनके पास फटकता नहीं है, उनको रोग, बुढ़ापा या मौतका डर नहीं रहता, उनका शरीर देवताके शरीरसा होजाता है ॥ २८ ॥

नाग्निना दह्यते गात्रं न शोषयति मारुतः।
न देहं क्लेदयन्त्यापो दंशयेन्न भुजङ्गमः ॥ २९ ॥

जो खेचरीमुद्राका साधन करते हैं, उनको अग्नि जला नहीं सकता, पवन शुष्क नहीं कर सकता, जल उनको गीला नहीं कर सकता और सर्प उनको काट नहीं सकता ॥ २९ ॥

लावण्यं च भवेद्गात्रे समाधिर्जायते ध्रुवम्।
कपालवक्त्रसंयोगे रसना रसमाप्नुयात् ॥ ३० ॥

---

* शास्त्रान्तरमें खेचरी-मुद्राका वर्णन इसप्रकार है।

भ्रुवोरन्तर्गतां दृष्टिं विधाय सुदृढां सुधीः।
उपविश्यासने वज्रे नानोपद्रववर्जिते ॥
लम्बिकोर्ध्वं स्थिते गर्ते रसनां विपरीतगाम्।

संयोजयेत्प्रयत्नेन सुधाकूपे विचक्षणः।
मुद्रैषा खेचरी प्रोक्ता भक्तानामनुरोधतः ॥

अर्थात्-निरुपद्रव स्थानमें वज्रासनसे बैठकर भ्रूद्वयके बीचमें दृष्टिको दृढ़तासे लगावें और जिह्वाको ऊपरको जो तालुकुहर है वहां पर रसनाको उलटी उठाकर लगावे, इसका नाम खेचरीमुद्रा है ॥

खेचरीमुद्राके साधकके शरीरमें अपूर्व लावण्य खिल उठता है और उसको समाधिकी प्राप्ति होजाती है, कपाल और मुखके मिलनेसे उसको रसनासे नानाप्रकारके श्रेष्ठ रस उत्पन्न होते हैं २०

नानारससमुद्भूतमानन्दं च दिने दिने।
आदौ लवणक्षारं च ततस्तिक्तकषायकम् ॥ २१ ॥
नवनीतं घृतं क्षीरं दधितक्रमधूनि च।
द्राक्षारसं च पीयूषं जायते रसनोदकम् ॥ २२ ॥

जो इस मुद्राका अभ्यास करते हैं, उनकी जिह्वासे दिन प्रतिदिन अद्भुत रससञ्चार हुआ करता है, और उनके मनमें दिन २ नया २ आनन्द उत्पन्न हुआ करता है। उन साधकोंकी जिह्वा में सबसे पहिले लवणरस, तदनन्तर क्षाररस, फिर तिक्तरस, पश्चात् कषायरस, इसके बाद नवनीत, घृत, क्षीर, दही, मट्ठा, मधु, द्राक्षा, अमृत आदि नाना प्रकारके रसोंका आविर्भाव होता है * ॥ २१-२२ ॥

विपरीतकरिणीमुद्रा।

नाभिमूले वसेत्सूर्यस्तालुमूले च चन्द्रमाः।
अमृतं ग्रसते सूर्यस्ततो मृत्युवशो नरः ॥ २३ ॥
ऊर्ध्वं च योजयेत्सूर्यं चन्द्रं च अध आनयेत्।
विपरीतकरी मुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥ २४ ॥
भूमौ शिरश्च संस्थाप्य करयुग्मं समाहितः।
ऊर्ध्वपादः स्थिरो भूत्वा विपरीतकरी मता ॥ २५ ॥

* योगके दूसरे शास्त्रोंमें लिखा है, कि जो व्यक्ति इस मुद्राका अभ्यास करते हैं, वे पापरूप महासागरसे उत्तीर्ण हो देवलोकमें जा सुख भोगते हैं, और भोग समाप्त होने पर पृथिवीमें सद्वंशमें उनका जन्म होता है, इस मुद्राको जो जानते हैं उनको शीघ्रही उत्तम गति मिलती है। यह जीवनकी समान है, साधारण मनुष्योंको इसे नहीं देना चाहिये, यह परमगुप्त है।

नाभिमूलमें सूर्यनाड़ी और तालुमूलमें चन्द्रनाडी रहती है, सहस्रदलपद्ममेंसे जो सुधाधारा बहती है, सूर्यनाड़ी उस सुधाको पीजाती है, इसी लिये जीवोंको मृत्युके मुखमें पड़ना पड़ता है; यदि चन्द्रनाड़ीसे अमृत पी लियाजाय तो मृत्यु उसके ऊपर आक्रमण नहीं कर सकता। इसी लिये योगबलसे सूर्यनाड़ीको ऊर्ध्वभागमें और चन्द्रनाड़ीको अधोभागमें ले आना योगीको उचित है। इस विपरीतकरिणी मुद्राके आचरणसे नाड़ियोंको उपर्युक्त रूपमें लाया जासकता है। शिरको पृथ्वीमें लगा कर दोनों हाथोंको टेक ले और दोनों चरणोंको ऊपरको उठा कुम्भकसे वायुको रोके रहे, इसका नाम विपरीतकरिणी मुद्रा है ३३-३४-३५

मुद्रेयं साधिता नित्यं जरां मृत्युञ्च नाशयेत्।
स सिद्धः सर्वलोकेषु प्रलयेऽपि न सीदति ॥ ३६ ॥

जो प्रतिदिन इस मुद्राका साधन करते हैं बुढ़ापा और मृत्यु उनसे हार जाती है, और वे सब लोकोंमें सिद्ध कहलाते हैं तथा प्रलयके समय भी वे भयसे खिन्न नहीं होते ॥ ३६ ॥

योनिमुद्रा।

सिद्धासनं समासाद्य कर्णचक्षुर्नसोमुखम्।
अंगुष्ठतर्जिनीमध्यानामाभिश्चैव साधयेत् ॥ ३७ ॥
काकीभिः प्राणं संकृष्य अपाने योजयेत्ततः।
षट्चक्राणि क्रमाद् ध्यात्वा हुंहंसमनुना सुधीः ॥३८॥
चैतन्यमानयेद् देवीं निद्रिता या भुजंगिनी।
जीवेन सहितां शक्तिं समुत्थाप्य कराम्बुजे ॥३९॥
शक्तिमयः स्वयं भूत्वा परं शिवेन संगमम्।
नानासुखं विहारं च चिन्तयेत्परमं सुखम् ॥ ४० ॥
शिवशक्तिसमायोगादेकान्ते भुवि भावयेत्।
आनन्दं च स्वयं भत्वा अहं ब्रह्मेति संभवेत् ॥४१॥

योनिमुद्रा परा गोप्या देवानामपि दुर्लभा ।
सकृत्तु लाभसंसिद्धिः समाधिस्थः स एव हि ॥४२॥

पहले सिद्धासनसे बैठकर दोनों कानोंको दोनों अँगूठोंसे, दोनों नेत्रोंको दोनों तर्जनी अङ्गुलियोंसे, नासिकाके दोनों छिद्रों को दोनों मध्यमा अँगुलियोंसे और मुखको दोनों अनामिकाओं से निरुद्ध करे। प्राणवायुको काकीमुद्रासे खेंचताहुआ अपान-वायुसे मिला दे और देहस्थ षट्चक्रका ध्यान करता हुआ "हुँ" और "हंस" इन दोनों मंत्रोंसे देवी कुलकुण्डलिनीको जाग्रत करे और जीवात्माके साथ मिली हुई कुण्डलिनीको सहस्रार पद्ममें लेजावे और लेजाते समय इसप्रकार भावना करे, कि-"मैं शक्तिमय होकर शिवके साथ सङ्गासक्त हो परम सुखभोग और विहार कररहा हूँ और शिवशक्तिके संयोगसे ही आनन्दमय ब्रह्म हूँ" इसका नाम योनिमुद्रा है। यह मुद्रा परमगोपनीय है, यह देवताओंको भी दुर्लभ है। इस मुद्राका एक बार भी साधन करनेसे साधक सिद्धि प्राप्त कर सकता है, इसके द्वारा अनायास ही समाधिस्थ होजाता है * ॥३७-४२॥

---

* शास्त्रान्तरमें योनिमुद्रा इसप्रकार है-

"आदौ पूरकयोगेन स्वाधारे पूरयेन्मनः। गुदमेढ्रान्तरे योनिस्तामाकुञ्च्य प्रवर्तते ॥ ब्रह्मयोनिगतं ध्यात्वा कामं बन्धूकसंनिभम्। सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ॥ तस्योर्ध्वं तु शिखा सूक्ष्मा चिद्रूपा परमाकला। तयापि हितमात्मानमेकीभूतं विचिन्तयेत्। गच्छन्ति ब्रह्ममार्गेण सिद्धिप्रयक्रमेण वै॥ अमृतं तद्विसर्गस्थं परमानन्दलक्षणम्। श्वेतरक्तं तेजसाढ्यं सुधाधाराप्रवर्षणम् ॥ पीत्वा कुलामृतं दिव्यं पुनरेव विशेत्कुलम्। पुनरेव कुलं गच्छेन्मात्रायोगेन नान्यथा। सा च प्राण-समाख्याता ह्यस्मिंस्तन्त्रे मयोदिता॥ पुनः प्रलीयते तस्यां कालाग्न्यादि-शिवात्मकम्। योनिमुद्रा परा ह्येषा बन्धस्तस्याः प्रकीर्तितः ॥ तस्यास्तु बन्धमात्रेण तन्नास्ति यन्न साधयेत् ॥"

ब्रह्महा भ्रूणहा चैव सुरापी गुरुतल्पगः ।
एतैः पापैर्न लिप्येत योनिमुद्रानिबन्धनात् ।
यानि पापानि घोराणि उपपापानि यानि च ॥४३॥
तानि सर्वाणि नश्यन्ति योनिमुद्रानिबन्धनात् ।
तस्मादभ्यसनं कुर्याद्यदि मुक्तिं समिच्छति ॥४४॥

अर्थ—पहले मनको पूरकयोगके प्रभावसे अपने मूलाधार कमलके मध्यमें वायुसहित पूरण करे। गुह्यद्वारसे उपस्थतक स्थानको योनिमण्डल है। इस योनिदेशको सकोड़ने रहनेसे योनिमुद्राका अंग ज्ञान होता है। फिर ब्रह्मयोनिमें कामदेवका ध्यान करे, कि—यह कामदेव बन्धूक (गुलदुपहरियाका पौधा) के पुष्पके समान रक्तवर्ण है, करोड़ों सूर्योंके समान कान्तिवाला और करोड़ों चन्द्रमाके समान शीतल है। इसप्रकार कामदेवका ध्यान कर परमाशक्तिका इसप्रकार चिन्तन करे; कि—वह अग्निकी लपटके समान सूक्ष्म चैतन्यस्वरूपा है और वह परमात्माके साथ एकत्रित होकर रह रही है। इसप्रकार ध्यान करे। प्राणायामके प्रभावसे स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीन अवस्थाओंसे युक्त जीवात्मा कुण्डलिनीके साथ सुषुम्नाके छिद्रमेंको होकर ब्रह्ममार्गमें गमन करता है। शिरमें स्थित अधोमुख कमलकी कलाके भीतर कुण्डलिनी शक्ति परमात्माके साथ संगमासक्त होकर रहने लगती है, वहाँसे पाटलवर्णवाली तेजस्वी आनन्दमय सुधाधारा टपकती रहती है। जीवात्मा योगके प्रभावसे मूलाधारसे ऊपरको उठकर उस ही कुलामृतका पान करता है एवं फिर नीचेको उतर कर मूलाधारकी ब्रह्मयोनिमें जाकर घुस जाता है।

इसप्रकार साधकका जीवात्मा ब्रह्मयोनिसे प्राणायामकी मात्राके योगसे गमनागमन करता है। इसप्रकार तीन बार करने पर मूलाधार पद्ममें ब्रह्मयोनिगता कुण्डलिनी परमात्माको प्राणस्वरूपिणी होकर रहने लगती है। इसप्रकार गमनागमन करने पर फिर वह जीवात्मा कालीक्याद्यशिवात्मक ब्रह्मयोनिमें लयको प्राप्त होगया है, ऐसा चिन्तन करे। इसको ही योनिमुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा सब मुद्राओंमें श्रेष्ठ है। इस मुद्राके प्रभावसे साधक सम्पूर्ण काम सिद्ध कर सकता है।

जो योनिमुद्राका साधन करता है, वह ब्रह्महत्या भ्रूणहत्या मद्यपान और गुरुदारागमन आदि पापसे लिप्त नहीं होता है पृथिवीमें जितने दारुण पातक और उपपातक हैं वे सब योनिमुद्राका अनुष्ठान करनेसे विनष्ट होजाते हैं। जो मुक्ति पानेकी इच्छा करते हैं उनको इस मुद्राका अभ्यास करना चाहिये ४३-४४

वज्रोलीमुद्रा।

धरामवष्टभ्य करयोस्तलाभ्याम्,
ऊर्ध्वं क्षिपेत्पादयुगं शिरः खे।
शक्तिप्रबोधाय चिरजीवनाय,
वज्रोलीमुद्रां कवयो वदन्ति ॥ ४५ ॥

दोनों हथेलियोंको पृथिवी पर स्थिर भावसे टेक कर दोनों पैरों और मस्तकको आकाशमेंको उठा देनेका नाम वज्रोलीमुद्रा है। इसके प्रभावसे देहमें बलसञ्चार होता है और दीर्घजीवन प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥

अयं योगो योगश्रेष्ठो योगिनां मुक्तिकारणम्।
अयं हितप्रदो योगो योगिनां सिद्धिदायकः ॥४६॥

यह मुद्रायोग सम्पूर्ण योगोंमें प्रधान है यह योगियोंकी मुक्तिका कारण है। यह योग परम उपकारी है, और योगियोंको सिद्धि देता है॥ ४६ ॥

एतद्योगप्रसादेन बिन्दुसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम्।
सिद्धे बिन्दौ महायत्ने किं न सिद्ध्यति भूतले ।४७।

इस योगके प्रसादसे बिन्दुसिद्धि होसकती है अर्थात् इस मुद्राका अनुष्ठान करनेसे साधकका बिन्दुपात नहीं होसकता, उसको बिन्दुधारण शक्ति मिल जाती है। बिन्दुसिद्धि होने पर ऐसा कौनसा कार्य है, जो सिद्ध न किया जासके ॥ ४७ ॥

भोगेन महता युक्तो यदि मुद्रां समाचरेत्।
तथापि सकला सिद्धिस्तस्य भवति निश्चितम् ४८

यदि भोगयुक्त व्यक्ति भी इस मुद्राका अनुष्ठान करता है तो उसको भी समस्त सिद्धियें निःसन्देह प्राप्त होसकती हैं ॥४८॥

शक्तिचालनीमुद्रा ।

मूलाधारे आत्मशक्तिः कुण्डली परदेवता ।
शयिता भुजगाकारा सार्धत्रिवलयान्विता ॥ ४९ ॥

परमदेवता कुण्डलिनी शक्ति साढे तीन लपेटवाली सर्पिणीकी समान मूलाधारकमलमें सोई हुई पड़ी है ॥ ४९ ॥

यावत्सा निद्रिता देहे तावज्जीवः पशुर्यथा ।
ज्ञानं न जायते तावत्कोटियोगं समभ्यसेत् ॥ ५० ॥

जब तक यह कुण्डलिनी शक्ति सोई हुई रहेगी तब तक करोड़ों योगाभ्यास करने पर भी जीवको ज्ञान नहीं होसकता, तब तक जीव पशुकी समान अज्ञानसे ढका रहता है ॥ ५० ॥

उद्घाटयेत्कपाटञ्च यथा कुञ्चिकया हठात् ।
कुण्डलिन्या प्रबोधेन ब्रह्मद्वारं प्रभेदयेत् ॥ ५१ ॥

जैसे तालीसे (ताला खोल कर) द्वारको हठात् खोला जा सकताहै,इसी प्रकार कुण्डलिनी शक्तिको जगाकर ब्रह्मद्वार उद्घाटित होसकता, इस प्रकार होने पर जीवको ज्ञानका सञ्चार होता है ॥ ५१ ॥

नाभिं संवेष्ट्य वस्त्रेण न च नग्नो बहिःस्थितः ।
गोपनीयगृहे स्थित्वा शक्तिचालनमभ्यसेत् ॥ ५२ ॥

नाभिको वस्त्रसे लपेट गोपनीय गृहमें बैठ कर शक्तिचालिनी मुद्राका अभ्यास करे, किन्तु नग्नावस्थामें बाहर बैठ कर इस योगका साधन करना उचित नहीं है ॥ ५२ ॥

वितस्तिप्रमितं दीर्घं विस्तारे चतुरङ्गुलम् ।
मृदुलं धवलं सूक्ष्मं वेष्टनाम्बरलक्षणम् ॥
एवमम्बरयुक्तञ्च कटिसूत्रेण योजयेत् ॥ ५३ ॥

बिलस्तभर चौड़ा चार अँगुल विस्तृत (लम्बा) सुकोमल श्वेत और सूक्ष्म वस्त्र नाभि पर रखे उस वस्त्र पर कटिसूत्र बाँधदे ॥ ५३ ॥

भस्मना गात्रसंलिप्तं सिद्धासनं समाचरेत् ।
नासाभ्यां प्राणमाकृष्य अपाने योजयेद्बलात् ॥५४॥
तावदाकुञ्चयेद् गुह्यं शनैरश्विनीमुद्रया ।
यावद् गच्छेत्सुषुम्नायां वायुः प्रकाशयेद्धठात् ॥५५॥

भस्मसे देहको लिप्त करके सिद्धासनसे बैठकर प्राणवायुको दोनों नथुनोंसे खेंच बलपूर्वक अपानवायुसे संयुक्त करे, जब तक वायु सुषुम्ना नाड़ीके बीचमें गमन करती हुई प्रकाशित न होवे तब तक अश्विनीमुद्रासे शनैः २ गुह्यप्रदेशको सकोड़े ५४-५५

तदा वायुप्रबन्धेन कुम्भिका च भुजंगिनी ।
बद्धश्वासस्ततो भूत्वा ऊर्ध्वमार्गं प्रपद्यते ॥ ५६ ॥

इसप्रकार श्वास रोकनेसे कुम्भक द्वारा वायु रोकने पर भुजंगाकारा कुण्डलिनी शक्ति जागरित होकर ऊपरके मार्गमें को खड़ी होजाती है अर्थात् सहस्रदलकमलमें परमात्माके साथ संगत होजाती है ॥ ५६ ॥

शक्तेर्विना चालनेन योनिमुद्रा न सिद्ध्यति ।
आदौ चालनमभ्यस्य योनिमुद्रां समभ्यसेत् ॥५७॥

शक्तिचालिनीमुद्राके बिना योनिमुद्रा सिद्ध नहीं होती अत एव पहिले इस मुद्राका अभ्यास करके फिर योनिमुद्राका अभ्यास करे ॥ ५७ ॥

इति ते कथितं चण्डकापाले शक्तिचालनम् ।
गोपनीयं प्रयत्नेन दिने दिने समभ्यसेत् ॥ ५८ ॥

हे चण्डकापाले ! इसप्रकार तुमसे शक्तिचालिनी मुद्राका वर्णन किया इसको यत्नपूर्वक रक्षाके साथ रखना चाहिये और

इसका दिन प्रतिदिन अभ्यास करना उचित है * ॥ ५८ ॥

मुद्रेयं परमा गोप्या जरामरणनाशिनी ।
तस्मादभ्यासनं कार्यं योगिभिः सिद्धिकांक्षिभिः ५९

यह मुद्रा परमगोपनीय है, इस मुद्रासे जरा और मृत्युसे छूट जाता है, अतः सिद्धि चाहनेवाले योगियोंको इसका अभ्यास करना चाहिये ॥ ५९ ॥

नित्यं योऽभ्यसते योगी सिद्धिस्तस्य करे स्थिता ।
तस्य विग्रहसिद्धिः स्याद्रोगाणां संक्षयो भवेत् ।६०।

जो योगी इस मुद्राका प्रतिदिन अभ्यास करता है, सिद्धि उसके हाथमें आजाती है और उसको विग्रहसिद्धि होजाती है और उसके सब रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ६० ॥

ताडागीमुद्रा ।

उदरं पश्चिमोत्तानं कृत्वा च तडागाकृति ।
ताडागी सा परा मुद्रा जरामृत्युविनाशिनी ॥ ६१ ॥

पश्चिमोत्तान आसनसे बैठ उदरको तडागकी समान करके कुम्भक करनेका नाम ताडागी मुद्रा है । यह मुद्रा श्रेष्ठ है, इससे जरा और मृत्यु दूर होजाती है ॥ ६१ ॥

माण्डूकीमुद्रा ।

मुखं संमुद्रितं कृत्वा जिह्वामूलं प्रचालयेत् ।
शनैर्ग्रसेदमृतं तां माण्डूकीं मुद्रिकां विदुः ॥ ६२ ॥

---

* शास्त्रान्तरमें शक्तिचालिनी मुद्रा इसप्रकार लिखी है—

"आधारकमले सुप्तां चालयेत्कुण्डलीं दृढाम् ।
अपानवायुमारुह्य बलादाकृष्य बुद्धिमान् ॥
शक्तिचालनमुद्रेयं सर्वशक्तिप्रदायिनी ॥"

अर्थात्–कुण्डलिनी शक्ति आधारकमलमें सोरही है, उसको जगाकर बलपूर्वक अपानवायुको खैंचे । इसका ही नाम शक्तिचालिनी मुद्रा है, यही मुद्रा सर्वशक्तिप्रदात्री है ।

मुखको बन्द करके तालुविवरमें जिह्वामूलको घुमावे और जिह्वासे शनैः शनैः सहस्रदलकमलमेंसे टपकते हुए अमृतका पान करे। इसका नाम माण्डूकीमुद्रा है॥ ६२॥

चलितं पलितं नैव जायते नित्ययौवनम्।
न केशे जायते पाको यः कुर्यान्नित्यमाण्डूकीम् ६३

माण्डूकी मुद्राका आचरण करने पर देहमें वलित (झुर्रियें) और पलित (केशोंका सफेद होना) नहीं होते, जो सदा माण्डूकीमुद्राको करते हैं, उनके केश कभी सफेद नहीं होते और वे सदा युवा ही बने रहते हैं॥ ६३॥

शाम्भवीमुद्रा।

नेत्राञ्जनं समालोक्य आत्मारामं निरीक्षयेत्।
सा भवेच्छाम्भवी मुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥६४॥

भ्रूयुगलके मध्यमें दृष्टिको स्थिर करके एकाग्र चित्तसे चिन्तायोगसे परमात्माका दर्शन करे। इसको शांभवी मुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा सब तन्त्रोंमें गोपनीय बताई गई है॥ ६४॥

वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव।
इयन्तु शांभवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव॥ ६५॥

वेद, पुराण अथवा समस्त शास्त्र सामान्यगणिकाकी समान प्रकाशित हैं, परन्तु यह शांभवी मुद्रा कुलवधूकी समान परमगुप्त रहती है॥ ६५॥

स एव आदिनाथश्च स च नारायणः स्वयम्।
स च ब्रह्मा सृष्टिकारी यो मुद्रां वेत्ति शांभवीम् ६६

जो व्यक्ति इस शांभवी मुद्राको जानता है वह आदिनाथ है, वह स्वयं नारायणस्वरूप और सृष्टिकर्ता ब्रह्मास्वरूप है ६६

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमुक्तं महेश्वरः।
शांभवीं यो विजानीयात्स च ब्रह्म न चान्यथा ६७

जिनको यह शांभवी मुद्रा आती है वे निःसन्देह मूर्त्तिमान् ब्रह्मस्वरूप हैं। इस बातको महादेवजीने तीन बार सत्य कहकर निरूपण किया है ॥ ६७ ॥

पञ्चधारणामुद्रा।

कथिता शांभवी मुद्रा शृणुष्व पञ्चधारणाम् ।
धारणानि समासाद्य किं न सिद्ध्यति भूतले ६८

शांभवी मुद्राका वर्णन होचुका अब पञ्चधारणा मुद्राको कहता हूँ, सुन ! इस पाँच प्रकारकी धारणामुद्राओंके सिद्ध होजाने पर, पृथिवीमें ऐसा कोई काम नहीं है जो सिद्ध न होसके ॥ ६८ ॥

अनेन नरदेहेन स्वर्गेषु गमनागमम् ।
मनोगतिर्भवेत्तस्य खेचरत्वं न चान्यथा ॥ ६९ ॥

पाँच प्रकारकी धारणामुद्रा सिद्ध होने पर उसके प्रसादसे मनुष्यशरीरसे ही साधक स्वर्गमें आजा सकता है और मनोगति और खेचरत्वको पासकता है ॥ ६९ ॥

यत्तत्त्वं हरितालदेशरचितं भौमं लकारान्वितम् ।
वेदास्रं कमलासनेन सहितं कृत्वा हृदि स्थायिनम् ।
प्राणांस्तत्र विनीय पञ्चघटिकां चित्तान्वितां धारये-
देषा स्तंभकरी ध्रुवं क्षितिजयं कुर्यादधोधारणा ७०

पृथिवी तत्त्वका वर्ण हरितालकी समान है, इसका बीज लकार है, इसकी आकृति चार कोनों वाली है, ब्रह्मा इसके देवता हैं। योगबलसे इस पृथिवीतत्त्वको हृदयमें उदित करे एवं चित्त लगाकर हृदयमें धारण कर प्राणवायुको खेंच पञ्चघटिका (दो घण्टे) तक कुम्भक करके इसको धारण करे। इसका नाम पार्थिवीधारणामुद्रा है। इसको ही अधोधारणामुद्रा कहते हैं। योगी इस धारणाका अभ्यास करने पर इसके बलसे

पृथिवीजय कर सकता है। इसका तात्पर्य यह है, कि- किसी भी पार्थिवघटनासे वह मृत्युके मुखमें नहीं पड़सकता * ॥७०॥

पार्थिवीधारणामुद्रां यः करोति हि नित्यशः ।
मृत्युञ्जयः स्वयं सोऽपि स सिद्धो विचरेद्भुवि ।७१।

जो प्रतिदिन इस पार्थिवीधारणामुद्राका अभ्यास करता है, वह साक्षात् मृत्युञ्जयकी समान होजाता है और सिद्ध बन कर पृथिवी पर विचरण करता है ॥ ७१ ॥

आम्भसीधारणामुद्रा ।

शंखेन्दुप्रतिमं च कुन्दधवलं तत्त्वं किलालं शुभम्,
तत्पीयूषवकारबीजसहितं युक्तं सदा विष्णुना ।
प्राणांस्तत्र विनीय पंच घटिकां चित्तान्वितां धारयेत्
एषा दुःसहतापपापहरिणी स्यादाम्भसी धारणा ७२

जलतत्त्वका वर्ण शंख, चन्द्रमा, कुन्दकी समान शुभ्र है। वकार इसका बीज है विष्णु इसके देवता हैं। योगबलसे हृदयमें में इस जलतत्त्वका उदय करके प्राणवायुको खैंच एकाग्रचित्तसे पाँच घड़ीतक कुम्भकद्वारा इसको धारणकरे। इसका नाम आम्भसीमुद्रा है इसका अभ्यास होने पर जलमें मृत्यु होनेकी आशंका

---

* मतान्तरमें पार्थिवीधरणामुद्रा इसप्रकार है—

पृथिवीधारणां वक्ष्ये पार्थिवेभ्यो भयापहाम् ।
नाभेरधो गुदस्योर्ध्वं घटिकां पंच धारयेत् ॥
वायुं ततो भवेत् पृथिवीधारणां तद्भयापहाम् ।
पृथिवीसंभवात्तस्य न मृत्युर्योगिनो भवेत् ॥

अर्थात्–पार्थिव पदार्थोंसे भयको दूर करनेवाली पृथिवीधारणा को मैं कहता हूँ, वायुको नाभिके नीचे और गुदासे ऊपर पाँच घड़ी तक धारण करे इसका नाम पृथिवीधारणा है, इसके साधनसे पार्थिव भय नहीं होते। जो योगी इसको सिद्ध कर लेते हैं, उनकी मृत्यु नहीं होती।

नहीं रहती और असह्य संसारपीड़ा दूर भागजाती है ॥ ७२ ॥

आम्भसीं परमां मुद्रां यो जानाति स योगवित् ।
जले च गभीरे घोरे मरणं तस्य नो भवेत् ॥ ७३ ॥

जिस योगज्ञ साधकको यह आंभसीमुद्रा आती है भीषण गंभीर जलमें पड़कर भी उसकी मृत्यु नहीं होती है ॥ ७३ ॥

इयन्तु परमा मुद्रा गोपनीया प्रयत्नतः ।
प्रकाशात्सिद्धिहानिः स्यात्सत्यं वच्मि च तत्त्वतः ॥ ७४ ॥

यह आंभसीमुद्रा प्रधान मुद्राओंमें है । इसका यत्नके साथ गोपन करे, मैं यह सत्य कहता हूँ, कि—इसको प्रकाशित करने से सिद्धिहानि होती है ॥ ७४ ॥

आग्नेयीधारणामुद्रा ।

यन्नाभिस्थितमिन्द्रगोपसदृशं बीजं त्रिकोणान्वितम्
तत्त्वं तेजोमयं प्रदीप्तमरुणं रुद्रेण यत्सिद्धिदम् ॥
प्राणांस्तत्र विनीय पञ्चघटिकां चित्तान्वितां धारये-
देषा कालगभीरभीतिहरिणी वैश्वानरी धारणा ॥ ७५ ॥

नाभिस्थल अग्नितत्त्वका स्थान है, इसका वर्ण इन्द्रगोप (वीरबहूटी) की समान लाल है । वकार इसका बीज है । इसकी आकृति त्रिकोण है । रुद्र इसका देवता है । यह तत्त्व तेजःपुञ्ज-मय, दीप्तिमान् और सिद्धिप्रद है । योगके प्रभावसे इस अग्नितत्त्वका उदय कर चित्तको एकाग्र कर पाँच घड़ी तक कुंभक करके प्राणवायुको धारण करे । इसको आग्नेयीधारणा

और ग्रन्थोंमें आम्भसीमुद्रा इसप्रकार है—

नाभिस्थाने ततो वायुं धारयेत्पंचघटिकाम् ।
ततो जलभयं नास्ति जलमृत्युर्न योगिनः ॥

अर्थात्—कुम्भक करके नाभिमें ५ घड़ी तक वायुको धारण करने को आम्भसीमुद्रा कहते हैं । इस मुद्राका साधन होजाने पर जलसे भय नहीं होसकता और साधक कभी भी जलमें नहीं डूबसकता ।

मुद्रा कहते हैं, इसका अभ्यास करने पर संसारभय दूर होजाता
है और अग्निसे साधककी मृत्यु नहीं होसकती * ॥ ७५ ॥

प्रदीप्ते ज्वलिते वन्हौ पतितो यदि साधकः ।
एतन्मुद्राप्रसादेन स जीवति न मृत्युभाक् ॥ ७६ ॥

यदि साधक प्रदीप्त अग्निमें भी गिर जाय तो भी इस मुद्रा
के प्रभावसे जीवित ही रहेगा, उसको किसी समय भी मृत्युका
ग्रास न होना पड़ेगा ॥ ७६ ॥

वायवीधारणामुद्रा ।

यद्भिन्नाञ्जनपुञ्जसंनिभमिदं धूम्रावभासं परं
तत्त्वं सत्त्वमयं यकारसहितं यत्रेश्वरो देवता ।
प्राणांस्तत्र विनीय पञ्चघटिकां चित्तान्वितां धारये-
देषा खे गमनं करोति यमिनां स्याद्वायवी धारणा ७७

वायुतत्त्वका वर्ण घुटे हुए अञ्जन और धुएँकी समान कृष्ण
वर्ण है, इसका बीज यकार है और देवता ईश्वर है यह तत्त्व
सत्त्वगुणमय है, योगबलसे इस वायुतत्त्वको उदित करके एकाग्र
मनसे प्राणवायुको खैंच कुम्भक करके पाँच घड़ी तक धारण
करे, इसका नाम वायवीधारणामुद्रा है । इस मुद्राका अनुष्ठान
करने पर वायुसे कभी भी मृत्यु नहीं होती है और साधकको

* तन्त्रान्तरमें यह मुद्रा इसप्रकार लिखी है, कि—
नाभ्यूर्ध्वमण्डले वायुं धारयेत्पंचघटिकाम् ।
आग्नेयी धारणा सेयं न मृत्युस्तस्य वन्हिना ।
न दह्यते शरीरं हि प्रक्षिप्ते वन्हिकुण्डके ॥
अर्थात्-पाँच घड़ी तक नाभिके ऊर्ध्वभागमें कुम्भक करके वायु
को धारण करे, इसका नाम आग्नेयी धारणा है । इस मुद्राका अनु-
ष्ठान करने पर वन्हिसे मृत्यु भय नहीं रहता । यदि साधकको जलते
हुए अग्निकुण्डमें भी डाल दिया, जाय तो भी उसका शरीर नहीं
जलता है ।

शून्यमें भ्रमण करनेकी शक्ति प्राप्त होजाती है ÷ ॥ ७७ ॥

इयन्तु परमा मुद्रा जरामृत्युविनाशिनी ।
वायुना म्रियते नापि खे च गतिप्रदायिनी ॥ ७८ ॥

यह मुद्रा प्रधान मुद्राओंमें है, इससे बुढ़ापा और मृत्यु दूर होजाता है, जो इसका आचरण करते हैं, वायुसे उनकी मृत्यु कभी भी नहीं होती और इस मुद्रासे आकाशमें विचरनेकी शक्ति होजाती है ॥ ७८ ॥

शठाय भक्तिहीनाय न देया यस्यकस्यचित् ।
दत्ते च सिद्धिहानिः स्यात्सत्यं वच्मि च चण्ड ते७९

शठ और भक्तिशून्यको यह मुद्रा कभी भी नहीं बतानी चाहिये, हे चण्डकापाले ! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, कि शठ और भक्तिरहितको मुद्रा देनेसे सिद्धिहानि होजाती है ॥ ७९ ॥

आकाशीधारणामुद्रा ।

यत्सिद्धौ वरशुद्धवारिसदृशं व्योम परं भासितम्,
तत्त्वं देवसदाशिवेन सहितं बीजं हकारान्वितम् ।
प्राणांस्तत्र विनीय पञ्चघटिकां चित्तान्वितां धारये-
देषा मोक्षकपाटभेदनकरी कुर्यान्नभोधारणा ॥ ८० ॥

आकाशतत्त्वका वर्ण विशुद्ध सागरजलकी समान है, सदाशिव इसके देवता हैं और हकार इसका बीज है, इस आकाश तत्त्वको योगबलसे उदित करके एकाग्रचित्तसे प्राणवायुको खेंच

÷ वायवीमुद्रा धारणा ग्रन्थान्तरोंमें इसप्रकार है—

नाभिद्वयोर्मध्ये तु प्रादेशद्वयसंमिते ।
धारयेत्पञ्चघटिकां वायुं सैव हि वायवी ।
धारणात्तस्य वायोस्तु योगिनो न भयं भवेत् ॥

अर्थात् नाभि और दोनों भौंके दो बिलस्तके स्थानमें कुम्भक करके वायुको पाँच घड़ी तक धारण करे, इसको वायवीधारणा मुद्रा कहते हैं इसके साधनसे साधकको किसी विपत्तिमें नहीं पड़ना पड़ता ।

पाँच घड़ी तक कुम्भक करे, इसका नाम आकाशीधारणामुद्रा है। इसका साधन करने पर देवत्व और मुक्ति मिलती है+८०

आकाशीधारणामुद्रां यो वेत्ति स योगवित्।
न मृत्युर्जायते तस्य प्रलयेऽपि न सीदति॥ ८१॥

जिसको आकाशीधारणामुद्रा विदित हो, उसको परमयोगवेत्ता जानना चाहिये। उसको किसी कारणसे भी मृत्युके मुखमें पड़ना नहीं पड़ता है अर्थात् वह इच्छामृत्यु होजाता है और उसको प्रलयके समय भी दुःखी होना नहीं पड़ता है*८१

+ तन्त्रान्तरमें आकाशीधारणामुद्रा इसप्रकार लिखी है, कि-

भ्रूमध्यादुपरिष्टात्तु धारयेत्पञ्चनाडिका।
वायुं योगी प्रयत्नेन आकाशीधारणा शुभा॥
आकाशधारणां कुर्वन्मृत्युं जयति तत्त्वतः।
यत्र यत्र स्थितो योगी सुखमत्यन्तमश्नुते॥

अर्थात्-योगी पाँच घड़ी तक यत्नपूर्वक भ्रूमध्यके ऊपर पाँच घड़ी तक वायुको कुम्भक योगसे धारण करे इसका नाम आकाशीधारणामुद्रा है। इस मुद्राके फलसे मृत्युको जीता जासकता है और योगी २ जिस २ स्थान पर स्थिति करता है, वहाँ २ बड़ा सुख पाता है।

* पञ्चधारणामुद्राका फल संहितामें इसप्रकार लिखा है, कि—

मेधावी पञ्चभूतानां धारणां यः समभ्यसेत्।
शतब्रह्मागमेनापि मृत्युस्तस्य न विद्यते॥
एवं च धारणाः पञ्च कुर्याद्योगी विधानतः।
ततो दृढशरीरस्य मृत्युस्तस्य न विद्यते॥
इत्येवं पञ्चभूतानां धारणां यः समभ्यसेत्।
ब्रह्मणः प्रलये चापि मृत्युस्तस्य न विद्यते॥

अर्थात्-जो मेधावी पञ्चधारणाका अभ्यास करते हैं, तो महाप्रलयोंमें भी उनकी मृत्यु नहीं होती, अतएव साधक विधानानुसार पञ्चविध धारणामुद्राका अभ्यास करें। इसके प्रभावसे शरीर दृढ होजाता है और मृत्यु हार सकती है जो पुरुष इस पञ्चभूतधारणामुद्राका अभ्यास करते हैं वे प्रलयके समय भी जीवित रह सकते हैं।

अश्विनीमुद्रा ।

आकुञ्चयेद् गुदद्वारं प्रकाशयेत्पुनः पुनः ।
सा भवेदश्विनी मुद्रा शक्तिप्रबोधकारिणी ॥८२॥

वारम्वार गुह्यद्वारको सकोड़े और फैलावे इसका नाम अश्वनी मुद्रा है, यह मुद्रा शक्ति (कुण्डलिनी) को जगाने वाली है, ऐसा प्रसिद्ध है ॥ ८२ ॥

अश्विनी परमा मुद्रा गुह्यरोगविनाशिनी ।
बलपुष्टिकरी चैव अकालमरणं हरेत् ॥ ८३ ॥

इस परमश्रेष्ठ अश्विनीमुद्राके प्रभावसे गुह्यरोग नष्ट होजाते हैं, बल और पुष्टि मिलती है और इसके प्रसादसे असमयमें मृत्युके मुखमें नहीं पड़ता है ॥ ८३ ॥

पाशिनीमुद्रा ।

कण्ठपृष्ठे क्षिपेत्पादौ पाशवद् दृढबन्धनम् ।
सा एव पाशिनी मुद्रा शक्तिप्रबोधकारिणी ॥८४॥

पाशकी समान करके दोनों चरणोंको कण्ठमें दृढरूपसे डाले इसको पाशिनीमुद्रा कहते हैं, यह मुद्रा शक्तिको जगाने वाली है ८४

पाशिनी महती मुद्रा बलपुष्टिविधायिनी ।
साधनीया प्रयत्नेन साधकैः सिद्धिकांक्षिभिः ॥८५॥

पाशिनी मुद्रा परमश्रेष्ठ मुद्रा है इससे बल बढता है पुष्टि होती है अत एव सिद्धि चाहने वाले साधकोंको इसकी यत्नके साथ साधना करनी चाहिये ॥ ८५ ॥

काकीमुद्रा ।

काकचञ्चुवदास्येन पिवेद्वायुं शनैः शनैः ।
काकीमुद्रा भवेदेषा सर्वरोगविनाशिनी ॥ ८६ ॥

अपने मुखको कौएकी चोंचकी समान कर धीरे २ वायु पीनेको काकीमुद्रा कहते हैं, इससे समस्त रोग नष्ट होजाते हैं ८६

काकीमुद्रा परा मुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।
अस्याः प्रसादमात्रेण काकवन्नीरुजो भवेत् ॥८७॥

इस परम श्रेष्ठ काकीमुद्राको सब ही तंत्रोंमें गोपनीय रखना लिखा है,इसके प्रसादसे कौएकी समान नीरोग होजाता है ८७

मातङ्गिनीमुद्रा ।

कण्ठमग्ने जले स्थित्वा नासाभ्यां जलमाहरेत् ।
मुखान्निर्गमयेत्पश्चात्पुनर्वक्त्रेण चाहरेत् ॥ ८८ ॥
नासाभ्यां रेचयेत्पश्चात् कुर्यादेवं पुनः पुनः ।
मातङ्गिनी परा मुद्रा जरामृत्युविनाशिनी ॥ ८९ ॥

कण्ठतकके जलमें स्थित होकर पहिले नासिकाके दोनों छिद्रोंसे जलको खैंचे और मुखसे निकाल दे और फिर मुखसे खैंच कर नाकसे निकाल दे, ऐसा बार २ करे, इसको ही मातङ्गिनी मुद्रा कहते हैं इस मुद्राके प्रसादसे जरा और मृत्यु साधक पर आक्रमण नहीं करते हैं ॥ ८८-८९ ॥

विरले निर्जने देशे स्थित्वा चैकाग्रमानसः ।
कुर्यान्मातङ्गिनीं मुद्रां मातङ्ग इव जायते ॥ ९० ॥

निर्जन स्थानमें बैठकर एकाग्र चित्तसे मातङ्गिनी मुद्राका आचरण करे । इस मुद्राका आचरण करनेसे साधक हाथीकी समान बलशाली होजाता है ॥ ९० ॥

यत्र यत्र स्थितो योगी सुखमत्यन्तमश्नुते ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन साधयेन्मुद्रिकां पराम् ॥ ९१ ॥

योगी इस मुद्राके प्रभावसे, चाहे कैसे स्थानमें रहे बड़ा सुखी रहता है, अत एव इस श्रेष्ठ मुद्राका यत्नके साथ साधन करे ९१

भुजङ्गिनीमुद्रा ।

वक्त्रं किञ्चित्सुप्रसार्य चानिलं गलया पिबेत् ।
सा भवेद्भुजगीमुद्रा जरामृत्युविनाशिनी ॥ ९२ ॥

मुखको कुछ फैला कर गलेसे वायुको पिये इसका ही नाम भुजङ्गिनी मुद्रा है, इस मुद्रासे जरा और मृत्यु दूर होजाती हैं ९२

यावच्च उदरे रोगमजीर्णादि विशेषतः ।
तत्सर्वं नाशयेदाशु यत्र मुद्रा भुजंगिनी ॥ ९३ ॥

उदरमें अजीर्ण आदि जो कुछ रोग होता है, इस भुजंगिनी मुद्राके प्रभावसे वह सब विना विलम्ब ही नष्ट होजाता है ९३

इदन्तु मुद्रापटलं कथितं चण्डकापाले ।
वल्लभं सर्वसिद्धानां जरामरणनाशनम् ॥ ९४ ॥

हे चण्डकापाले! मैंने तुमसे मुद्राओंका यह जितना विषय वर्णन किया, इससे जरा और मृत्यु नष्ट होती है और यह सब सिद्धों को प्रिय है ॥ ९४ ॥

शठाय भक्तिहीनाय न देयं यस्यकस्यचित् ।
गोपनीयः प्रयत्नेन दुर्लभं मरुतामपि ॥ ९५ ॥

जो व्यक्ति शठ हो अथवा भक्तिहीन हो उसको ये मुद्रायें कभी नहीं सिखानी चाहियें। इनको सदा दुर्लभ रखना चाहिये, ये मुद्राएँ देवताओंको भी अलभ्य हैं ॥ ९५ ॥

ऋजवे शान्तचित्ताय गुरुभक्तिपराय च ।
कुलीनाय प्रदातव्यं भोगमुक्तिप्रदायकम् ॥ ९६ ॥

जो व्यक्ति सरल, शान्तचित्त, गुरुभक्तिपरायण और कुलीन हो उसको ही यह सिखानी चाहियें ॥ ९६ ॥

मुद्राणां पटलं ह्येतत्सर्वव्याधिविनाशनम् ।
नित्यमभ्यासशीलस्य जठराग्निविवर्धनम् ॥ ९७ ॥

इन सब मुद्राओंसे सब रोग दूर होजाते हैं, जो व्यक्ति प्रति दिन इनका अभ्यास करते हैं उनकी जठराग्नि बढजाती है ९७

तस्य न जायते मृत्युर्नास्य जरादिकं तथा ।
न चाग्निजलभयं तस्य वायोरपि कुतो भयम् ॥९८॥

जो व्यक्ति मुद्रासाधन करते हैं, मृत्यु और बुढ़ापा उनको पीड़ा नहीं देता, उनको अग्नि और जलसे भय नहीं होता, फिर वायुसे तो होगा ही कहाँसे ॥ ९८ ॥

कासः श्वासः प्लीहा श्लेष्मरोगाश्च विंशतिः ।
मुद्राणां साधनाच्चैव विनश्यंति न संशयः ॥९९॥

मुद्रासाधन करनेसे उसके प्रसादसे कास, श्वास, प्लीहा कुष्ट और बीस प्रकारके श्लेष्म रोग आदि सब ही नष्ट होजाते हैं, ९९

बहुना किमिहोक्तेन सारं वच्मि च चण्ड ते ।
नास्ति मुद्रासमं किञ्चित्सिद्धिदं क्षितिमण्डले १००

हे चण्ड ! तुमसे और अधिक क्या कहूँ, यह निचोड़ बात है कि–भूमण्डलमें मुद्राओंकी समान सिद्धि देने वाला और कोई (साधन) नहीं है ॥ १०० ॥

॥ तृतीयोपदेश–समाप्त ॥

चतुर्थोपदेशः

घेरण्ड उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रत्याहारमनुत्तमम् ।
यस्य विज्ञातमात्रेण कामादिरिपुनाशनम् ॥ १ ॥

घेरण्डने कहा कि–हे चण्डकापाले ! अब तुमसे श्रेष्ठ प्रत्याहार योगको कहता हूँ इसके जानने पर काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य ये छः शत्रु विनष्ट होजाते हैं ॥ १ ॥

ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ २ ॥

चित्त जिस २ विषयमें चञ्चल होकर भ्रमण करे, प्रत्याहारके द्वारा उस उस विषयसे मनको हटा कर आत्माके वशमें करे॥२॥

पुरस्कारं तिरस्कारं सुश्राव्यं भावमायकम् ।
मनस्तस्मान्नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ ३ ॥

चाहे सम्मान हो, चाहे अपमान हो, ऐसे ही कानोंको अच्छा लगाने वाला हो, चाहे बुरा लगने वाला हो किसीमें भी चित्तको न लगा कर आत्मामें लगावे ॥ ३ ॥

सुगन्धो वापि दुर्गन्धो घ्राणेषु जायते मनः ।
तस्मात्प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ ४ ॥

सुगन्ध हो चाहे दुर्गन्ध हो जिस किसी गंधमेंको मन चले उसको हटा कर आत्मामें लगा देवे ॥ ४ ॥

मधुराम्लकतिक्तादिरसान्याति यदा मनः ।
तदा प्रत्याहरेत्तेभ्य आत्मन्येव वशं नयेत् ॥ ५ ॥

मधुर, अम्ल, तिक्त (तीखे), कसैले रस वाले किसी विषयमें मन चञ्चल हो तो उसको लौटाकर आत्मामें लगावे । इसका नाम प्रत्याहार है ॥ ५ ॥

॥ चतुर्थ उपदेश समाप्त ॥

❀ पञ्चमोपदेशः ❀

घेरण्ड उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्राणायामस्य यद्विधिम् ।
यस्य साधनमात्रेण देवतुल्यो भवेन्नरः ॥ १ ॥

घेरण्ड ऋषि बोले कि—अब प्राणायामका विधान कहा जाता है; कि प्राणायामका साधन करनेसे मनुष्य देवतुल्य होजाता है ।१।

आदौ स्थानं तथा कालं मिताहारं तथापरम् ।
नाडीशुद्धिश्च तत्पश्चात् प्राणायामं च साधयेत् ।२।

प्राणायाम स धनेके लिये चार बातें आवश्यकीय हैं । पहिला योग्य स्थान, दूसरा विहित समय, तीसरा मिताहार और चौथी नाडीशुद्धि । इन चारोंके सिद्ध होने पर प्राणायामका अभ्यास करे ॥ २ ॥

स्थाननिर्णयः ।

दूरदेशे तथारण्ये राजधान्यां तथान्तिके ।
योगारंभं न कुर्वीत कृतं च सिद्धिहा भवेत् ॥ ३ ॥

दूर देशमें, वनमें, राजधानीमें और मनुष्योंके समीपमें योगारंभ करना उचित नहीं है, इन स्थानोंमें योगसाधन करने पर सिद्धि-हानि होसकती है ॥ ३ ॥

अविश्वासं दूरदेशे अरण्ये रक्षिवर्जितम् ।
लोकारण्ये प्रकाशश्च तस्मात्त्रीणि विवर्जयेत् ॥४॥

दूरदेशमें योगसाधन करनेमें अविश्वास (भरोसा नहीं) होता है, अरण्यमें योगसाधन करनेमें रक्षकशून्य होजाता है, और जनसमूहके समीप करनेसे प्रकाशित होनेका डर रहता है अतः यह तीनों स्थान योगसाधनके लिये अनुपयुक्त हैं ॥ ४ ॥

सुदेश धार्मिके राज्ये सुभक्ष्ये निरुपद्रवे ।
तत्रैकं कुटीरं कृत्वा प्राचीरैः परिवेष्टितम् ॥ ५ ॥
वापीकूपतडागं च प्राचीरमध्यवर्ति च ।
नात्युच्चं नातिनिम्नञ्च कुटीरं कीटवर्जितम् ॥६॥
सम्यग्गोमयलिप्तञ्च कुटीरं तत्र निर्मितम् ।
एवं स्थानेषु गुप्तेषु प्राणायामं समभ्यसेत् ॥ ७ ॥

जिस देशका राजा धर्मपरायण हो, जिस स्थानमें खाद्यद्रव्य सुलाभ हों, और किसी प्रकारका उपद्रव न हो ऐसे देशमें एक कुटी (मकान) बनावे, इस मकानसे चारों ओर दीवारें खड़ी हों और इसके भीतर बावड़ी, कुआ और तालाव आदि खुदवावे, वह कुटी बहुत ऊँची और बहुत नीची न होनी चाहिये उसको गोवरसे अच्छी तरह लीपे, उसमें कोई जानवर न हो, ऐसी कुटी तयार कर उस गुप्तस्थानमें प्राणायामका अभ्यास करे ५-७

कालनिर्णयः ।

हेमन्ते शिशिरे ग्रीष्मे वर्षायां च ऋतौ तथा ।

योगारंभं न कुर्वीत कृते योगो हि रोगदः ॥ ८ ॥

हेमन्त, शिशिर, ग्रीष्म और वर्षा ऋतुमें योगका आरंभ न करे इन ऋतुओंमें योग आरंभ करने पर वह योग रोगको उत्पन्न करता है ॥ ८ ॥

वसन्ते शरदि प्रोक्तं योगारंभं समाचरेत् ।
तथा योगी भवेत् सिद्धो रोगान्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ९

वसन्त और शरत् इन दो ऋतुओंमें योगका आरंभ करना श्रेष्ठ है। इन दो ऋतुओंमें योगका आरंभ करने पर योगी सिद्ध और रोगसे मुक्त होजाता है ॥ ९ ॥

चैत्रादिफाल्गुनान्ते च माघादिफाल्गुनान्तिके ।
द्वौ द्वौ मासौ ऋतुभागौ अनुभावश्चतुश्चतुः ॥१०॥

चैत्रमाससे फाल्गुन मास तक बारह महीने और छः ऋतुएँ होती हैं। एवं माघमाससे (दूसरे) फाल्गुन तक चौदह महीने और छः ऋतुओंका अनुभव होता है दो दो मासमें एक एक ऋतु (होती हैं) और चार मासमें एक २ ऋतुका अनुभव होता है१०

वसन्तश्चैत्रवैशाखौ ज्येष्ठाषाढौ च ग्रीष्मकः ।
वर्षा श्रावणभाद्राभ्यां शरदाश्विनकार्तिकौ ।
मार्गपौषौ च हेमन्तः शिशिरो माघफाल्गुनौ ॥११॥

चैत्र और वैशाख यह दो महीने वसन्त ऋतु, ज्येष्ठ और आषाढ़ ग्रीष्म, श्रावण और भाद्रपद वर्षा, आश्विन और कार्तिक शरत् और अगहन और पौष ये दो महीने हेमन्त और माघ फाल्गुन ये दो महीने शिशिर ऋतु कहलाते हैं ॥ ११ ॥

अनुभावं प्रवक्ष्यामि ऋतूनां च यथोदितम् ।
माघादिमाधवान्तेषु वसन्तानुभवश्चतुः ॥ १२ ॥
चैत्रादि चाषाढान्तञ्च निदाघानुभवश्चतुः ।
आषाढादि चाश्विनान्तं च प्रावृषानुभवश्चतुः ॥१३॥

माघादिमार्गशीर्षान्तं शरदानुभवऋतुः ।
कार्तिकादिमाघमासान्तं हेमन्तानुभवऋतुः ॥१४॥

इस समय जिस २ मासमें जिस २ ऋतुका अनुभव होता है, सो कहते हैं। माघमाससे वैशाखमास तक चार मासोंमें वसन्त ऋतुका अनुभव होता है. चैत्रसे आषाढ़ तक चार महीनोंमें ग्रीष्म ऋतुका अनुभव होता है, आषाढ़से अश्विन तक वर्षा ऋतुका अनुभव होता है, भाद्रपदसे अगहन तक चार मास तक शरद ऋतुका अनुभव होता है, कार्तिकसे माघ तक चार महीने शीत ऋतुका अनुभव होता है ॥ १२-१४ ॥

वसन्ते वापि शरदि योगारंभं समाचरेत् ।
तदा योगो भवेत्सिद्धो विनायासेन कथ्यते ॥१५॥

वसन्त और शरद ऋतुमें ही योगारम्भ करना उचित है, इन दोनों ऋतुओंमें योगारम्भ करनेसे योग सहजमें ही सिद्ध होजाता है ॥ १५ ॥

मिताहारः ।

मिताहारं विना यस्तु योगारंभं तु कारयेत् ।
नानारोगा भवन्त्यस्य किञ्चिद्योगो न सिद्ध्यति १६

जो परिमित (थोड़ा) आहार न कर डट कर भोजन करके योगारम्भ करता है, उसको नाना प्रकारके रोग होजाते हैं और उसका योग बिन्दुमात्र भी सिद्ध नहीं होता ॥ १६ ॥

शाल्यन्नं यवपिण्डं वा गोधूमपिण्डकं तथा ।
मुद्गं माषचणकादि शुभ्रं च तुषवर्जितम् ॥ १७ ॥

योगी चावल, जौंके सत्तू, गेंहूका आटा, मूँग, उड़द या चना आदि साफ़ भूसीरहित करके खावे ॥ १७ ॥

पटोलं पनसं मानं कंकोलं च शुकाशाकम् ।
द्राढिकाकर्कटीरम्भोदुम्बरीकंटकंटकम् ॥ १८ ॥

परवल, कटहल, मानकन्द, शीतलचीनी, करेला या कन्दूरी, अरहर, ककड़ी, केला, गूलर और चौलाई आदिका शाक खावे १८

आमरंभां बालरम्भां रम्भादण्डं च मूलकम् ।
वार्ताकीमूलकं ऋद्धिं योगी भक्षणमाचरेत् ॥१६॥

कच्ची और पक्की केलेकी गेलें, केलेके गुच्छेका दण्डा, और केलेकी जड़, बैंगन, ऋद्धि (औषधि) इनको योगी खावे॥१६॥

बालशाकं कालशाकं तथा पटोलपत्रकम् ।
पञ्चशाकं प्रशंसीयाद्वास्तुकं हिलमोचिकाम् ॥ २० ॥

कच्चा शाक, समयके अनुसारका शाक, परवलके पत्ते, बथुआ और हुरहुरू ये पाँच शाक खावे ॥ २०॥

शुद्धं सुमधुरं स्निग्धं उदरार्धविवर्जितम् ।
भुज्यते सुरसं प्रीत्या मिताहारमिमं विदुः ॥२१॥

निर्मल, सुमधुर स्निग्ध और सुरस द्रव्यसे सन्तोषके साथ आधे पेटको भरे और आधेको खाली रक्खे, इसको मिताहार कहते हैं ॥ २१ ॥

अन्नेन पूरयेदर्धं तोयेन तु तृतीयकम् ।
उदरस्य तुरीयांशं संरक्षेद्वायुचारणे ॥ २२ ॥

उदरके आधे भागको अन्नसे भरे तीसरे भागको जलसे भरे और वायुके घूमनेके लिये चौथे भागको खाली रक्खे ॥ २२॥

कट्वम्लं लवणं तिक्तं भृष्टं च दधि तक्रकम् ।
शाकोत्कटं तथा मद्यं तालं च पनसं तथा ॥ २३ ॥
कुलत्थं मसूरं पांडुं कूष्माण्डं शाकदण्डकम् ।
तुम्बीकोलकपित्थं च कंटबिल्वपलाशकम् ॥ २४ ॥
कदम्बं जम्बीरं लिम्बं लकुचं लशुनं विषम् ।
कामरङ्गं प्रियालं च हिंगुशाल्मलिकेमुकम् ।
योगारम्भे वर्जयेत पथस्त्रीवन्हिसेवनम् ॥ २५ ॥

कडवा, अम्ल, लवण, तिक्त, ये चार रसवाली वस्तुएँ, भृष्ट-द्रव्य (भुनीहुई चीज़) दही, मठा बुरे शाक, शराव, ताल, पका कटहल, कुलथी, मसूर, पीतकाका शाक, पेठा शाकदण्ड, घिया, वेर, कैथ, काँटेदार वेल, ढाक, कदम्बके फूल, जम्बीरी, लकुच, लहसन, विष, कमरख, प्याज, हींग, सेमर, गोभी, इनका योगी योगारंभके समय सेवन न करे और मार्गमें चलना, पराई स्त्री और अग्निसे तापनेको भी छोड़दे ॥ २२-२५ ॥

नवनीतं घृतं क्षीरं गुडशर्कादिचैक्षवम् ।
पञ्चरंभां नारिकेलं दाडिमं मशिवारसम् ।
द्राक्षां तु नवनीं धात्रीं रसमम्लं विवर्जितम् ॥२६॥

योगारंभमें मक्खन, घी, गुड, ईखसे वनी हुई, शर्करा आदि, पाँच प्रकारके केले, नारियल, अनार, सौंफ नोनियाँ आँवले और अम्लरसवाली वस्तुओंको न खावे ॥ २६ ॥

एलां जातिलवंगं च पौरुषं जम्बुजांबुलम् ।
हरीतकीं च खजूरं योगी भक्षणमाचरेत् ॥ २७ ॥

इलायची, जायफल, लौंग, तेजोदायक पदार्थ, जामन, कठ जामन, हरड, खजूर, इनको योगी खावे ॥ २७ ॥

लघुपाकं प्रियं स्निग्धं तथा धातुप्रपोषणम् ।
मनोऽभिलषितं योग्यं योगी भोजनमाचरेत् २८

सरलतासे पचनेवाले, स्निग्ध, धातुको पुष्ट करनेवाले और मनके अनुकूल पदार्थ योगीको खाने चाहियें ॥ २८ ॥

काठिन्यं दुरितं पूतिमुष्णं पर्युषितं तथा ।
अतिशीतं चातिचोग्रं भक्ष्यं योगी विवर्जयेत् ॥२६॥

कड़ी चीज, जिसको भक्षण करनेसे मनमें पापवासना उत्पन्न हो, दुर्गन्धित, बहुत गरम, वासी, बहुत ठण्डा, और उग्र भोजन इन सब वस्तुओंका योगी भक्षण न करे ॥ २६ ॥

प्रातःस्नानोपवासादि कायक्लेशविधिं विना ।
एकाहारं निराहारं यामान्ते च न कारयेत् ॥ ३० ॥

शरीरको कष्ट पहुँचाना, प्रातः स्नान और उपवास, एक ही वार भोजन करना, निराहार रहना और एक प्रहर बाद ही भोजन करलेना इन बातोंको योगी त्याग देय ॥ ३० ॥

एवं विधिविधानेन प्राणायामं समाचरेत् ।
आरंभे प्रथमं कुर्यात् क्षीराज्यं नित्यभोजनम् ।
मध्यान्हे चैव सायान्हे भोजनद्वयमाचरेत् ॥ ३१ ॥

इसप्रकार नियमानुसार प्राणायामका अभ्यास करे, प्राणायाम करनेसे पहिले प्रतिदिन, क्षीर और घृतका सेवन करे और मध्यान्ह तथा सायंकालको इसप्रकार दो वार भोजन करे ।३१।

नाडीशुद्धिः ।

कुशासने मृगाजिने व्याघ्राजिने च कम्बले ।
स्थलासने समासीनः प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ।
नाडीशुद्धिं समासाद्य प्राणायामं समभ्यसेत् ॥३२॥

कुशासन, मृगचर्म, व्याघ्रचर्म, कम्बल अथवा स्थलासन पर पूर्वको वा उत्तरको मुख करके बैठ नाडीशुद्धि करे फिर प्राणायाम साधनेका अभ्यास करे ॥ ३२ ॥

चण्डकापालिरुवाच ।

नाडीशुद्धिं कथं कुर्यान्नाडीशुद्धिश्च कीदृशी ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि तद्वदस्व दयानिधे ॥ ३३ ॥

चण्डकापालिने प्रश्न किया कि—हे दयानिधे ! नाडीशुद्धि किस प्रकार करनी चाहिये और नाडीशुद्धिका स्वरूप क्या है ? उसको मैं विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ, अतः आप उसका वर्णन करिये ॥ ३३ ॥

घेरण्ड उवाच ।

मलाकुलासु नाडीषु मारुतो नैव गच्छति ।
प्राणायामः कथं सिद्धस्तत्त्वज्ञानं कथं भवेत् ।
तस्मादादौ नाडीशुद्धिं प्राणायामं ततोऽभ्यसेत् ३४

घेरण्डने उत्तर दिया कि मलसे भरी हुई नाड़ियोंमें पवन अच्छी प्रकार प्रवाहित नहीं होता है, फिर प्राणायाम-साधन कैसे होसकता है और तत्त्वज्ञान भी कैसे होसकता है, इसलिये पहिले नाडीशोधन करे फिर प्राणायामका अभ्यास करे ॥३४॥

नाडी शुद्धिर्द्विधा प्रोक्ता समनुर्निर्मनुस्तथा ।
बीजेन समनुं कुर्यान्निर्मनुं धौतिकर्मणा ॥ ३५ ॥

नाडीशुद्धि समनु और निर्मनु भेदसे दो प्रकारकी है । बीज-मन्त्रसे जो नाड़ीशुद्धि कीजाती है उसको समनु और धौतिकर्म से जो नाड़ीशुद्धि कीजाती है उसको निर्मनु नाड़ीशुद्धि कहते हैं

धौतिकर्म पुरा प्रोक्तं षट्कर्मसाधने यथा ।
शृणुष्व समनुं चण्ड नाडीशुद्धिं यथा भवेत् ॥३६॥

हे चण्ड ! षट्कर्मका वर्णन करते समय धौतिकर्म कह दिया है, अब जिस प्रकार समनुनाडीशुद्धि होती है सो सुन ॥ ३६ ॥

उपविश्यासने योगी पद्मासनमाचरेत् ।
गुर्वादिन्यासनं कुर्याद्यथैव गुरुभाषितम् ।
नाडीशुद्धिं प्रकुर्वीत प्राणायामविशुद्धये ॥ ३७ ॥

पहिले पद्मासनसे बैठ कर गुर्वादि न्यासको करे फिर गुरुकी आज्ञाके अनुसार प्राणायाम साधनके लिये नाडी शुद्धि करे३७

वायुबीजं ततो ध्यात्वा धूम्रवर्णं सतेजसम् ।
चन्द्रेण पूरयेद्वायुं बीजैः षोडशकैः सुधीः ॥ ३८ ॥
चतुःषष्ट्या मात्रया च कुम्भकेनैव धारयेत् ।
द्वात्रिंशन्मात्रया वायुं सूर्यनाड्या च रेचयेत् ॥३९॥

फिर वायुबीज (यं) का ध्यान करे। इस बीजका सोलह वार जप करता हुआ बाईं नासिकासे वायुको खेंचे, ध्यानके समय इस वायुबीजको तेजोमय और धूम्रवर्णका मानना चाहिये, (पूरकके पीछे) चौंसठ वार इस बीजको जपता हुआ कुम्भक करके धारण करे और बत्तीस वार जप करते२ दाहिनी नासिका से पवनको निकालदे ॥ ३८-३९ ॥

नाभिमूलाद्वह्निमुत्थाप्य धारयेत्तेजोवनीयुतम् ।
वह्निबीजषोडशेन सूर्यनाड्या च पूरयेत् ॥ ४० ॥
चतुःषष्ट्या मात्रया च कुम्भकेनैव धारयेत् ।
द्वात्रिंशन्मात्रया वायुं शशिनाड्या च रेचयेत् ॥४१॥

नाभिमूल अग्नितत्त्वका स्थान है। योगके प्रभावसे उस नाभिमूलमें अग्नितत्त्वको उदित (प्रकट) करके पृथ्वीतत्त्वको इस अग्नितत्त्वके साथ संयुक्त करके ध्यान करनेलगे, फिर षोडश मात्रा (वार) अग्निबीज (रं) का ध्यान करता हुआ दाहिने नासापुटको वायुसे भरे। इसी प्रकार चौंसठ मात्राओंसे कुम्भक करके वायुको रोके, बत्तीस मात्रासे जप करता हुआ वाम नासिकापुटसे इस वायुका रेचन करदेय ॥ ४०-४१ ॥

नासाग्रे शशभृद्बिम्बं ध्यात्वा ज्योत्स्नासमन्वितम् ।
ठं बीजषोडशेनैव इडया पूरयेन्मरुत् ॥ ४२ ॥
चतुःषष्ट्या मात्रया च वं बीजेनैव धारयेत् ।
अमृतं प्लावितं ध्यात्वा नाडीधौतिं विभावयेत् ॥४३॥

फिर नासिकाके अग्रदेशमें चाँदनी वाले चन्द्रबिम्बके ध्यान पूर्वक ठं बीजकी सोलह मात्राओंके जपसे वामनासिकासे वायु को भरे, फिर जलबीज अर्थात् वं इस बीजको चौंसठ वार बोलता हुआ सुषुम्नानाडीमें कुम्भकयोगसे वायुको धारण करे। फिर इस प्रकार ध्यान करे कि-'नासिकाके अग्रभागमें स्थित

चन्द्रबिम्बसे अमृत टपक रहा है, उससे शरीरकी सम्पूर्ण नाड़ियें धुल रही हैं' इसप्रकार ध्यान करता हुआ पृथिवीबीज "लं" को बत्तीस वार जपता हुआ दक्षिणनासापुटसे उस भरेहुए वायुका रेचन करे ॥ ४२-४३ ॥

एवंविधां नाडीशुद्धिं कृत्वा नाडीं विशोधयेत् ।
दृढो भूत्वासनं कृत्वा प्राणायामं समाचरेत् ॥४४॥

इसप्रकार नाडीशुद्धिसे नाडीका शोधन करके आसन पर दृढ़तासे बैठ प्राणायामका अभ्यास करे ॥ ४४ ॥

सहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी शीतली तथा ।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्छा केवली चाष्टकुम्भकाः ४५

सहित, सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्छा और केवली भेदसे कुम्भक आठ प्रकारका है ॥ ४५ ॥

सहितो द्विविधः प्रोक्तः प्राणायामं समाचरेत् ।
सगर्भो बीजमुच्चार्य निर्गर्भो बीजवर्जितः ॥ ४६ ॥

सगर्भ और निर्गर्भ भेदसे सहित कुम्भक दो प्रकारका है । जो कुम्भक बीज मन्त्रका उच्चारण करके किया जाता है वह सगर्भ कहलाता है और जो कुम्भक बीजमंत्रको छोड़ कर किया जाता है उसको निर्गर्भ कुम्भक कहते हैं ॥ ४६ ॥

प्राणायामं सगर्भं हि प्रथमं कथयामि ते ।
सुखासने चोपविश्य प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ।
ध्यायेद्विधिं रजोगुण्यं रक्तवर्णमवर्णकम् ॥ ४७ ॥

मैं सगर्भ प्राणायामकी विधिको पहिले बताता हूँ, सुन ! पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख होकर सुखपूर्वक आसन पर बैठ ब्रह्माका ध्यान करे, कि-"ब्रह्मा लालवर्ण, अकाररूपी और रजोगुणयुक्त हैं" ॥ ४७ ॥

इडया पूरयेद्वायुं मात्रया षोडशैः सुधीः ।

पूरकान्ते कुम्भकाद्ये कर्तव्यस्तूड्डीनकः ॥ ४८ ॥

फिर बुद्धिमान साधक "अं" बीजको सोलह वार जपता हुआ वाएँ नासापुटसे वायुको भरे, कुम्भक करनेसे पहिले और पूरक (वायु भरने) के अन्तमें पहिले उड्डीयानबन्ध करे ॥४८॥

सत्त्वमयं हरिं ध्यात्वा उकारं कृष्णवर्णकम् ।

चतुःषष्ट्या मात्रया च कुम्भकेनैव धारयेत् ॥४९॥

फिर सत्त्वगुणसंयुक्त उकाररूपी कृष्णवर्ण हरिके ध्यानपूर्वक "उँ" इस बीजको चौसठ वार जपता हुआ कुम्भकयोगसे वायुको धारण करे ॥ ४९ ॥

तमोमयं शिवं ध्यात्वा मकारं शुक्लवर्णकम् ।

द्वात्रिंशन्मात्रया चैव रेचयेद्विधिना पुनः ॥ ५० ॥

तमोगुणयुक्त मकाररूपी श्वेतवर्ण शिवके ध्यानपूर्वक "मं" इस बीजको बत्तीस वार जपता हुआ दक्षिण नासापुटसे भरे हुए वायुको निकाल देय ॥ ५० ॥

पुनः पिङ्गलयापूर्य कुम्भकेनैव धारयेत् ।

इडया रेचयेत्पश्चात् तद्बीजेन क्रमेण तु ॥ ५१ ॥

फिर पहिले कही हुई रीतिसे सब बीजोंका यथासंख्यक जप करता हुआ कुम्भकयोगसे वायुको धारण करे और बाम-नासापुटसे रेचन करे ॥ ५१ ॥

अनुलोमविलोमेन वारम्वारं च साधयेत् ।

पूरकान्ते कुम्भकान्ते धृतनासापुटद्वयम् ।

कनिष्ठिकानामिकाङ्गुष्ठैस्तर्जनीमध्यमां विना ॥५२॥

इसी प्रकार वारम्वार अनुलोम विलोम क्रमसे प्राणायामको करे, वायुका भरना पूर्ण होनेपर कुम्भककी समाप्ति तक तर्जनी और मध्यमा अंगुलियोंको छोड़ कनिष्ठिका और अनामिका तथा अंगुठा इन तीन अँगुलियोंसे नथोंको दवाये रहे

अर्थात् जिस समय कुंभक करे उस समय वामनासिकाको कनिष्ठिका और अनामिकासे और दक्षिणनासिकाको केवल अँगूठे से पकड़े ॥ ५२ ॥

प्राणायामन्तु निर्गर्भं विना बीजेन जायते ।
एकादिशतपर्यन्तं पूरककुम्भकरेचनम् ॥ ५३ ॥

विना बीजमंत्रके निर्गर्भ प्राणायाम होता है । पूरक, कुम्भक और रेचक इन तीन अंगोंवाले प्राणायामकी एकसे सौ तक मात्रा हैं * ॥ ५३ ॥

उत्तमा विंशतिर्मात्रा षोडशी मध्यमा तथा ।
अधमा द्वादशी मात्रा प्राणायामास्त्रिधाः स्मृताः ५४

मात्रानुसार प्राणायाम तीन प्रकारका है, विंशतिमात्रा, षोडशमात्रा और बारह मात्राका । विंशतिमात्राका प्राणायाम उत्तम है, षोडशमात्राका मध्यम है और द्वादशमात्राका अधम है + ॥५४॥

अधमाज्जायते घर्मं मेरुकंपं च मध्यमात् ।
उत्तमाद्भूमित्यागं च त्रिविधं सिद्धिलक्षणम् ।५५।

अधममात्राके प्राणायामके साधनमें (सिद्धि होने पर) पसीना आता है, मध्यममात्राके प्राणायामसाधनमें मेरुकम्प होता है अर्थात् मेरुदण्ड नामवाली एक नाडी गुह्यस्थानसे ब्रह्मरन्ध्र तक चली गई है वह नाड़ी काँपने लगती है और उत्तममात्रा के प्राणायामके साधनके सिद्ध होने पर भूतल परसे आकाशमें

---

* पूरक एकगुण मात्राका, रेचक द्विगुण मात्राका और कुम्भक चतुर्गुण मात्राका होता है ।

+ उत्तममात्राके प्राणायामसाधनमें पूरक विंशतिमात्राका, कुम्भक अस्सी मात्राका और रेचक चालीस मात्राका निर्दिष्ट है । इसी प्रकार मध्यम और अधममात्राके प्राणायामके समय पूरक, रेचक और कुम्भकोंकी मात्रा समझ लेनी चाहिये ।

को उठ कर विचरण करने लगता है (पसीना निकलना, मेरु-कम्प और भूमित्याग, ये तीन प्राणायाम सिद्धिके लक्षण हैं)५५

प्राणायामात्खेचरत्वं प्राणायामाद्रोगनाशनम् ।
प्राणायामाद्बोधयेच्छक्तिं प्राणायामान्मनोन्मनी ।
आनन्दो जायते चित्ते प्राणायामी सुखी भवेत् ५६

प्राणायामका साधन करने पर उसके प्रभावसे खेचरत्व (आकाशमें विचरण करनेकी) शक्ति होजाती है प्राणायामके प्रभावसे रोगराशि दूर होजाती हैं, प्राणायामके प्रभावसे परमात्मशक्ति जागृत होसकती है और इसके प्रभावसे दिव्यज्ञान मिलजाता है। जो व्यक्ति प्राणायामका साधन करता है उसके चित्तमें अनिर्वचनीय आनन्द उत्पन्न होता है और वह परम सुखी होजाता है ॥ ५६ ॥

घेरण्ड उवाच ।

कथितं सहितं कुंभं सूर्यभेदनकं शृणु ।
पूरयेत्सूर्यनाड्या च यथाशक्ति बहिर्मरुत् ॥ ५७ ॥
धारयेद्बहुयत्नेन कुंभकेन जलन्धरैः ।
यावत्स्वेदः नखकेशाभ्यां तावत्कुर्यात्तु कुम्भकम्५८

घेरण्डने कहा, कि हे चण्डकापालि ! सहितकुम्भकका विषय तुमसे कह दिया, अब सूर्यभेद नामक कुम्भकका विषय तुमसे कहता हूँ, सुनो ! पहिले जालन्धरमुद्राके अनुष्ठानपूर्वक दक्षिण नासिकासे वायु भरे, अति यत्नके साथ कुम्भक करके इस वायुको धारण करे रहे जब तक (पैरके) नाखूनसे लेकर केश तकसे पसीना न निकले तब तक कुम्भकके द्वारा वायुको रोके रहे ॥ ५७—५८ ॥

प्राणोऽपानः समानश्च व्यानोदानौ तथैव च ।
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ॥ ५९ ॥

प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान ये पाँच वायु अन्तःस्थ हैं और नाग, कूर्म कृकर, देवदत्त और धनञ्जय ये पाँच वायु बहिःस्थ हैं ॥ ५६ ॥

हृदि प्राणो वहेन्नित्यं अपानो गुदमण्डले ।
समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यगः ॥ ६० ॥
व्यानो व्याप्य शरीरे तु प्रधानाः पञ्चवायवः ।
प्राणाद्याः पञ्च विख्याता नागाद्याः पञ्चवायवः ॥६१॥

प्राण हृदयदेशमें, अपान गुह्यमें, समान नाभिमें, उदान कण्ठ में और व्यान वायु समस्त देहमें व्याप्त होकर प्रवाहित होता रहता है, ये पाँच वायु ही अन्तःस्थ नामसे प्रसिद्ध हैं, एवं नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय ये पाँच वायु बहिःस्थ कहलाते हैं ॥ ६०-६१ ॥

तेषामपि च पञ्चानां स्थानानि च वदाम्यहम् ।
उद्गारे नाग आख्यातः कूर्मस्तून्मीलने स्मृतः ६२
कृकरः क्षुत्कृते ज्ञेयो देवदत्तो विजृंभणे ।
न जहाति मृते क्वापि सर्वव्यापी धनञ्जयः ॥ ६३ ॥

ये पाँच बहिःस्थ वायु जिस २ स्थानमें प्रवाहित होते हैं, उन को कहते हैं । नागवायु डकारमें, कूर्मवायु नेत्रोंके उन्मीलनमें, कृकरवायु छींकमें, देवदत्तवायु जँभाई लेनेमें प्रवाहित होता है धनञ्जय नामक वायु मृत्यु होने पर भी शरीरमें प्रवाहित होता रहता है ॥ ६२-६३ ॥

नागो गृह्णाति चैतन्यं कूर्मश्चैव निमेषणम् ।
क्षुत्तृड् कृकरश्चैव चतुर्थेन तु जृंभणम् ।
भवेद्धनञ्जयाच्छब्दं क्षणमात्रं न निःसरेत् ॥ ६४ ॥

नागवायुसे चैतन्य होता है, कूर्मवायुसे निमेषण, कृकरवायुसे क्षुधा और तृषा और देवदत्तवायुसे जँभाईका काम सिद्ध होता

है। धनञ्जय वायुसे शब्द होता है, यह वायु मरण मरको भी शरीरको नहीं छोड़ता है * ॥ ६४ ॥

---

* दश प्राणोंके विषयमें शास्त्रान्तरमें इसप्रकार लिखा है, कि—

"हृद्यस्ति पंकजं दिव्यं दिव्यलिंगेन भूषितम्।
कादिठान्ताक्षरोपेतं द्वादशार्णविभूषितम्॥
प्राणो वसति तत्रैव वासनाभिरलंकृतः।
अनादिकर्मसंश्लिष्टः प्राप्याहंकारसंयुतः॥
प्राणस्य वृत्तिभेदेन नामानि विविधानि च।
वर्तन्ते तानि सर्वाणि कथितुं नैव शक्यते॥
प्राणोऽपानः समानश्चोदानो व्यानश्च पंचमः।
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः॥
दशनामानि मुख्यानि मयोक्तानीह शास्त्रतः।
कुर्वन्ति तेऽत्र कार्याणि प्रेरितानि स्वकर्मभिः॥
अत्रापि वायवः पञ्च मुख्याः स्युर्दशतः पुनः।
तत्रापि श्रेष्ठकर्तारौ प्राणापानौ मयोदितौ॥
हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले।
उदानः कण्ठदेशस्थो व्यानः सर्वशरीरगः॥
नागादिवायवः पञ्च कुर्वन्ति ते च विग्रहे।
उद्गारोन्मीलनं क्षुत्तृड् जृम्भा हिक्का च पञ्चमः॥
अनेन विधिना यो वै ब्रह्माण्डं वेत्ति विग्रहम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम्॥"

हृदयमें देशमें दिव्यलिंगविभूषित दिव्य पद्म विराजमान है, यह पद्म क से लेकर ठ तक बारह वर्णोंसे अलंकृत है, अनादि कर्मसंश्लिष्ट अहङ्कारसंयुक्त वासनालंकृत प्राण उस ही पद्ममें अवस्थित रहता है, वृत्तिभेदसे प्राणके नाम बहुत हैं, उन सबका वर्णन करनेको कोई भी समर्थ नहीं है। उनमें प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय ये दश प्राण प्रधान हैं, ये अपने २ कर्मके द्वारा प्रेरित होकर कार्यसाधन करते हैं। इन दश प्राणोंमें पूर्वोक्त पाँच प्रधान हैं, उनमें भी प्राण और अपान सर्वश्रेष्ठ हैं। प्राण हृदयदेशमें, अपान गुह्यमें, समान नाभिमण्डलमें, उदान कण्ठदेशमें, और व्यान सम्पूर्ण शरीरमें प्रवाहित होता रहता है। नागादि पाँच

सर्वे ते सूर्यसंभिन्ना नाभिमूलात्समुद्धरेत् ।
इडया रेचयेत्पश्चाद्धैर्येणाखण्डवेगतः ॥ ६५ ॥
पुनः सूर्येण चाकृष्य कुम्भयित्वा यथाविधि ।
रेचयित्वा साधयेत्तु क्रमेण च पुनः पुनः ॥ ६६ ॥

कुम्भक करते समय पूर्वोक्त प्राणादि सब वायुओंको पिंगला नाड़ीसे विभिन्न कर नाभिमूलदेशसे समानवायुको उठावे, फिर धैर्यके साथ वेगपूर्वक वामनासिकापुटसे रेचन करे। फिर दक्षिणनासापुटसे वायु भर कर सुषुम्नासे कुम्भक कर वामनासापुट से रेचन करे। बारम्बार ऐसा करे (इसको) ही सूर्यभेद-कुम्भक कहते हैं ॥ ६५-६६ ॥

कुम्भकः सूर्यभेदश्च जरामृत्युविनाशकः ।
बोधयेत्कुण्डलीं शक्तिं देहानलविवर्धनम् ।
इति ते कथितं चण्ड, सूर्यभेदनमुत्तमम् ॥ ६७ ॥

यह सूर्यभेद नामक कुम्भक जरा और मृत्युका नाश कर डालता है, इसके द्वारा कुण्डलिनीशक्ति जाग सकती है और देहस्थ अग्निकी वृद्धि होती है, हे चण्ड ! इसप्रकार तुमसे उत्तम सूर्यभेद कुम्भक कहा ॥ ६७ ॥

उज्जायीकुम्भकः ।

नासाभ्यां वायुमाकृष्य वायुं वक्त्रेण धारयेत् ।
हृद्गलाभ्यां समाकृष्य मुखमध्ये च धारयेत् ॥६८॥

वहिःस्थित वायुको नासिकाद्वयसे और अन्तःस्थ वायुको हृदय और गलेसे खेंच कुम्भकयोगसे मुखके भीतर धारण करे ॥६८॥

मुखं प्रक्षाल्य संवन्द्य कुर्याज्जालन्धरं ततः ।
आशक्ति कुंभकं कृत्वा धारयेदविरोधतः ॥ ६९ ॥

वायु देहमें रहते हुए यथाक्रम उद्गार, उन्मीलन, क्षुधा, जृम्भा और हिक्का नामक कार्योंको करते रहते हैं। इसप्रकार जो व्यक्ति ब्रह्माण्डस्वरूप इस देहतत्त्वको जान जाता है, वह व्यक्ति सम्पूर्ण पापोंसे छूट कर परमगतिको प्राप्त होता है।

फिर मुख प्रक्षालन कर जालन्धर मुद्राका अनुष्ठान कर शक्तिके अनुसार कुम्भक करता हुआ निर्विघ्नरीतिसे वायुको धारण करे ॥ ६९ ॥

उज्जायीकुंभकं कृत्वा सर्वकार्याणि साधयेत् ।
न भवेत्कफरोगं च क्रूरवायुरजीर्णकम् ॥ ७० ॥
आमवातं क्षयं कासं ज्वरप्लीहा न विद्यते ।
जरामृत्युविनाशाय चोज्जायीं साधयेन्नरः ॥७१॥

इसको ही उज्जायीकुंभक कहते हैं। इसके प्रभावसे सम्पूर्ण कर्म सिद्ध होसकते हैं। इसके प्रभावसे श्लेष्मरोग, दुष्टवायु, अजीर्ण, आमवात, क्षयरोग, कास, ज्वर और प्लीहा—ये सब रोग दूर होसकते हैं। जो व्यक्ति जरा और मृत्युको हराना चाहे, उसको इस उज्जायीकुंभकका साधन करना चाहिये ।७१।

शीतलीकुम्भकः ।

जिह्वया वायुमाकृष्य उदरे पूरयेच्छनैः ।
क्षणं च कुंभकं कृत्वा नासाभ्यां रेचयेत्पुनः ॥७२॥

जिह्वाद्वारा वायुको खेंच धीरे २ पेटको वायुसे पूर्ण करदे फिर कुछ समय तक कुम्भकयोगसे वायुको धारण कर दोनों नासापुटोंसे निकालदे, इसको ही शीतलीकुम्भक कहते हैं ।७२।

सर्वदा साधयेद् योगी शीतलीकुम्भकं शुभम् ।
अजीर्णं कफपित्तं च नैव देहे प्रजायते ॥ ७३ ॥

साधक सर्वदा इस कल्याणप्रद शीतलीकुम्भकका अनुष्ठान करे। इसका साधन करने पर अजीर्ण, कफरोग, और पित्तसे उत्पन्न हुए सब रोग विनष्ट होजाते हैं ॥ ७३ ॥

भस्त्रिकाकुम्भकः ।

भस्त्रैव लौहकाराणां यथा क्रमेण संभ्रमेत् ।
ततो वायुश्च नासाभ्यामुभाभ्यां चालयेच्छनैः ।७४।

जैसे लुहारकी धौंकनीमें वायु भरी जाती है, उस ही प्रकार नासिकाद्वयद्वारा वायुको पेटमें भर धीरे २ पेटमें परिचालित करे ॥ ७४ ॥

एवं विंशतिवारं च कृत्वा कुर्याच्च कुम्भकम् ।
तदन्ते चालयेद्वायुं पूर्वोक्तं च यथाविधि ॥ ७५ ॥
त्रिवारं साधयेदेनं भस्त्रिकाकुम्भकं सुधीः ।
न च रोगं न च क्लेशमारोग्यं च दिने दिने ॥७६॥

इसप्रकार बीस बार करके कुम्भक कर वायुको धारण करे। फिर भस्त्रिका (लुहारकी धौंकनी)से जैसे वायु निकलती है, तैसे ही नासिकासे वायुको निकाले। इसको ही भस्त्रिकाकुंभक कहते हैं। इसप्रकार यथानियम तीन बार आचरण करे। इसके प्रभावसे किसी प्रकारकी व्याधि और कष्ट उत्पन्न नहीं होता है और दिन २ आरोग्य बढने लगता है ॥ ७५-७६ ॥

अर्धरात्रिगते योगी जन्तूनां शब्दवर्जिते ।
कर्णौ निधाय हस्ताभ्यां कुर्यात्पूरककुम्भकम् ॥७७॥

आधी रात बीतने पर जिस स्थान पर किसी भी जीवका शब्द सुनाई न आवे ऐसे स्थानमें जाकर योगी अपने हाथोंसे अपने दोनों कानोंको बन्द करके पूरक और कुम्भकका अनुष्ठान करे ॥ ७७ ॥

शृणु याद्दक्षिणे कर्णे नादमन्तर्गतं शुभम् ।
प्रथमं झिञ्झिनादं च वंशीनादं ततः परम् ॥७८॥
मेघझर्झरभ्रमरीघंटाकांस्यं ततः परम् ।
तूरीभेरीमृदङ्गादिनिनादानकदुंदुभिः ॥ ७९ ॥

इसप्रकार कुम्भकका अनुष्ठान करने पर साधकको दाहिने कानमें नानाप्रकारके शब्द सुनाई आते हैं। ये सब शब्द देहके भीतरी भागमें उदित होते हैं। पहिले झींगुरकेसा शब्द सुनाई

देता है, तदनन्तर वंशीध्वनि, फिर मेघका शब्द, फिर झर्झर नामक बाजेकी ध्वनि फिर भ्रमरकी गुनगुनाहटसा शब्द सुनाई आता है। फिर क्रमशः घंटा, कांसेके पात्र, तुरही, भेरी, मृदंग और नगाड़ेकासा शब्द सुनाई देता है ॥ ७८-७९ ॥

एवं नानाविधं नादं जायते नित्यमभ्यसात्।
अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः॥८०॥
ध्वनेरन्तर्गतं ज्योतिर्ज्योतेरंतर्गतं मनः।
तन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमं पदम्।
एवं च भ्रामरी सिद्धिः समाधिसिद्धिमाप्नुयात् ८१

इसप्रकार प्रति दिन नाना प्रकारकी ध्वनि सुनाई आती रहती है। अन्तमें हृदयस्थित अनाहत नामक बारह कली वाले कमलमें होने वाले शब्दकी प्रतिध्वनि सुनाई आती है। फिर साधक निमीलित नेत्रोंसे हृदयके उस द्वादशदलकमलकी प्रतिध्वनिके अन्तर्गत ज्योतिका निरीक्षण करता है। यह ज्योति ही परब्रह्म है। योगीका मन उस ब्रह्ममें लगकर ब्रह्मरूपी विष्णुके परमपदमें लयको प्राप्त होता है। इसप्रकार भ्रामरी कुम्भक सिद्ध होता है, भ्रामरीकुम्भकके सिद्ध होने पर समाधि सिद्ध होजाती है ॥ ८०-८१ ॥

मूर्छाकुम्भकः।

सुखेन कुम्भकं कृत्वा मनश्च भ्रुवोरन्तरम्।
संत्यज्य विषयान्सर्वान् मनोमूर्छासुखप्रदम्॥
आत्मनि मनसो योगादानन्दो जायते ध्रुवम् ॥८२॥

पहिले सुखसे पूर्वकथित कुंभक करके सम्पूर्ण विषयोंसे मन को लौटा कर भ्रूयुगलके मध्यस्थलमें स्थित आज्ञापूर नामक शुभ्र द्विदल कमलमें मनको लगाकर इस पद्ममें स्थित परमात्मा में लीन करदे। इसको मूर्छाकुम्भक कहते हैं। इस कुम्भकसे बड़ाभारी आनन्द मिलता है ॥ ८२ ॥

केन्द्रीकृतमाम: ।

हंकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः ।
षट्शतानि दिवारात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः ।
अजपां नाम गायत्रीं जीवो जपति सर्वदा ॥ ८३॥

श्वासके निकलने और घुसनेके समय "हं" और "सः" का उच्चारण होता है अर्थात् जिस समय श्वास निकलता है उस समय हंकार और जिस समय श्वासवायु प्रविष्ट होता है, उस समय सःकार उच्चारित होता है। हंकारको शिवस्वरूप और सःकारको शक्तिरूप समझना चाहिये। हंसः और सोऽहं ये दोनों शब्द एक ही हैं। ये परमपुरुष और प्रकृतिमय शब्द ही अजपा गायत्री नामसे प्रसिद्ध हैं। जीव दिन रातमें इक्कीस हजार छः सौ बार इस गायत्रीका जप करता है अर्थात् एक दिन रातमें श्वासवायु २१६०० बार निकलता और प्रविष्ट होता है ॥ ८३ ॥

मूलाधारे यथा हंसस्तथा हि हृदि पंकजे ।
तथा नासापुटे द्वन्द्वे त्रिविधं संगमागमम् ॥ ८४ ॥

मूलाधार अर्थात् लिंग और गुह्यस्थलके मध्यस्थलमें हृदयपद्ममें अर्थात् अनाहतनामक पद्ममें एवं नासापुटद्वयमें अर्थात् इडा, पिङ्गला, इन तीन स्थानोंमें हंसः स्वरूप अजपा जप होता है अर्थात् इन तीन स्थानोंसे ही वायुका गमनागमन हुआ करता है ॥ ८४ ॥

षण्णवत्यङ्गुलीमानं शरीरं कर्मरूपकम् ।
देहाद्बहिर्गतो वायुः स्वभावो द्वादशांगुलिः॥८५॥
गायने षोडशांगुल्यं भोजने विंशतिस्तथा ।
चतुर्विंशांगुलिर्मार्गे निद्रायां त्रिंशदंगुलिः ।
मैथुने षट्त्रिंशदुक्तं व्यायामे च ततोऽधिकम्॥८६॥

कर्मरूप शरीरका परिमाण छियानवे अंगुलिका है। वायुकी स्वाभाविक बहिर्देश गतिका परिमाण बारह अंगुलका है गायन

में सोलह अंगुलका होता है अर्थात् सोलह अंगुल जाता है। भोजनके समय इसका परिमाण बीस अंगुलका, मार्गमें चलते समय इसका परिमाण चौबीस अंगुलका, निद्रामें इसका परिमाण तीस अंगुलका और मैथुनमें इसका परिमाण छत्तीस अंगुलका एवं व्यायामके समय इसका परिमाण और भी अधिक होता है ॥ ८५-८६ ॥

स्वभावेऽस्य गते न्यूनं परमायुः प्रवर्धते ।
आयुःक्षयोऽधिके प्रोक्तो मारुतो चान्तराद् गते ॥८७॥

श्वासवायुकी स्वाभाविक वहिर्देशगति बारह अंगुलकी होती है, यह पहिले ही कह दिया है। यदि यह बारह अंगुलसे न्यून (कम) होजावे तो परमायु बढ़ सकती है। और यह बारह अंगुलसे अधिक होजाती है तो परमायु क्षीण होती चली जाती है ॥ ८७ ॥

तस्मात्प्राणे स्थिते देहे मरणं नैव जायते ।
वायुना घटसंबन्धे भवेत्केवलकुम्भकः ॥ ८८ ॥

जब तक देहमें प्राणवायु रहता है, तब तक मृत्युकी सम्भावना नहीं होती। कुम्भकके अभ्यासमें प्राणवायुको ही मुख्य जानना चाहिये ॥ ८८ ॥

यावज्जीवो जपेन्मंत्रमजपासंख्यकेवलम् ।
अद्यावधि धृतं संख्याविभ्रमं केवलीकृते ॥ ८९ ॥
अतएव हि कर्तव्यः केवलीकुम्भको नरैः ।
केवली चाजपा संख्या द्विगुणा च मनोन्मनी ॥९०॥

जीवका शरीर जब तक रहे केवली करके परिमित संख्यामें अजपा मन्त्रको जपे, केवलीकुम्भक करने पर पहिले निर्णय की हुई (२१६००) संख्यामें कमी होजाती है (और आयु बढ़ती है) इसी लिये मनुष्योंको केवलीकुम्भक करना चाहिये। अजपा

की संख्यासे केवलीको दुगनी करे तो चित्तमें बड़ा आनन्द होता है ॥ ८९–९० ॥

नासाभ्यां वायुमाकृष्य केवलं कुम्भकं चरेत् ।
एकादिकचतुःषष्टिं धारयेत्प्रथमे दिने ॥ ९१ ॥

नासापुटोंसे वायुको खेंच केवल कुम्भकका अनुष्ठान करे। पहिले दिन इस कुम्भकका साधन करने पर एक बारसे चौंसठ बार तक श्वासवायुको धारण करे ॥ ९१ ॥

केवलीमष्टधा कुर्याद्यामे यामे दिने दिने ।
अथवा पंचधा कुर्याद् यथा तत् कथयामि ते ॥९२॥
प्रातर्मध्यान्हसायान्हे मध्ये रात्रिचतुर्थके ।
त्रिसंध्यमथवा कुर्यात्सममाने दिने दिने ॥ ९३ ॥

इस केवलीकुम्भकको प्रतिदिन आठ प्रहारमें आठ बार साधन करे अथवा प्रतिदिन चार बार साधन करे अर्थात् प्रातःकाल, मध्यान्हकाल, सायंकाल और रात्रिके शेषभागमें साधन करे। अथवा प्रातःकाल, मध्यान्हकाल और सायंकाल इन तीनों समयोंमें समान–संख्यामें साधे ॥ ९२–९३ ॥

पञ्चवारं दिने वृद्धिर्वारैकं च दिने तथा ।
अजपापरिमाणं च यावत् सिद्धिः प्रजायते ॥ ९४ ॥
प्राणायामं केवलीं च तदा वदति योगवित् ।
कुम्भके केवलीसिद्धौ किं न सिध्यति भूतले ॥९५॥

जब तक यह केवलीकुम्भक सिद्ध न हो तबतक प्रतिदिन अजपाजपके प्रमाणसे एक वा पाँच बार (के समयको) क्रमसे बढ़ाता जाय ॥ ९४–९५ ॥

॥ पञ्चमोपदेश समाप्त ॥

———०———

षष्ठोपदेशः

ध्यानयोगः ।

घेरण्ड उवाच ।

स्थूलं ज्योतिस्तथा सूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधं विदुः ।
स्थूलं मूर्तिमयं प्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयं तथा ।
सूक्ष्मं बिन्दुमयं ब्रह्म कुण्डली परदेवता ॥ १ ॥

घेरण्डने कहा, कि-ध्यान तीन प्रकारका है, स्थूलध्यान, ज्योतिर्ध्यान और सूक्ष्मध्यान । जिसमें मूर्तिमान् अभीष्टदेवता का अथवा गुरुका चिन्तवन किया जाता है, उसको स्थूलध्यान कहते हैं । जिसमें तेजोमय ब्रह्म वा प्रकृतिकी भावना की जाय उसको ज्योतिर्ध्यान कहते हैं । और जिस ध्यानके द्वारा बिन्दुमय ब्रह्म और कुलकुण्डलिनी शक्तिका दर्शनलाभ हो उसको सूक्ष्मध्यान कहते हैं ॥ १ ॥

स्थूलध्यानम् ।

स्वकीयहृदये ध्यायेत्सुधासागरमुत्तमम् ।
तन्मध्ये रत्नद्वीपं तु सुरत्नवालुकामयम् ॥ २ ॥

साधक नेत्र मूँद कर अपने मनमें ऐसा ध्यान करे, कि-एक अनुत्तम अमृतसागर वह रहा है । उस समुद्रके बीचमें एक रत्नमय द्वीप है, वह द्वीप रत्नमयी वालुका वाला होनेसे चारों ओर शोभा देरहा है ॥ २ ॥

चतुर्दिक्षु नीपतरुर्बहुपुष्पसमन्वितः ।
नीपोपवनसंकुले वेष्टितं परिखा इव ॥ ३ ॥
मालतीमल्लिकाजातीकेशरैश्चंपकैस्तथा ।
पारिजातैः स्थलैः पद्मैर्गंधामोदितदिङ्मुखैः ॥ ४ ॥

इस रत्नद्वीपके चारों ओर कदम्बके वृक्ष अपूर्व शोभा पारहे हैं । बहुतसे पुष्पोंके खिलनेसे वृक्षोंकी असीम शोभा होरही है ।

कदम्बवनके चारों ओर मालती, मल्लिका (चमेली) केसर तथा चम्पा, पारिजातपद्म और स्थलपद्मोंके बहुतसे वृक्ष इस द्वीपकी खाईकी समान लग रहे हैं। इन सब वृक्षोंके पुष्पोंकी महकसे सब दिशाएँ महक रही हैं ॥ ३-४ ॥

तन्मध्ये संस्मरेद्योगी कल्पवृक्षं मनोहरम् ।
चतुःशाखं चतुर्वेदं नित्यपुष्पफलान्वितम् ॥ ५ ॥

भ्रमराः कोकिलास्तत्र गुंजन्ति निगदन्ति च ।
ध्यायेत्तत्र स्थिरो भूत्वा महामाणिक्यमण्डपम् ॥६॥

योगी मनमें इसप्रकार चिन्ता करे कि—उस काननके मध्य-भागमें मनोहर कल्पवृक्ष विद्यमान है, उसकी चार शाखायें हैं, ये चारों शाखायें चतुर्वेदमय हैं और ये शाखायें तत्काल उत्पन्न हुए पुष्प और फलोंसे लद रही हैं। इस वृक्षकी शाखाओं पर भ्रमर गुन२करते हुए मँडरा रहे हैं और कोकिलाएँ शाखाओं पर बैठ कुहू २ शब्द कर मनको हरेलेती हैं। फिर योगी इस प्रकार चिन्ता करे कि—इस कल्पतरुके नीचे महामाणिक्य—जटित एक रत्नमण्डप परम शोभा पारहा है ॥ ५-६ ॥

तन्मध्ये तु स्मरेद्योगी पर्यङ्कं सुमनोहरम् ।
तत्रेष्टदेवतां ध्यायेद्यद्ध्यानं गुरुभाषितम् ॥ ७ ॥

यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम् ।
तद्रूपं ध्यायते नित्यं स्थूलध्यानमिदं विदुः ॥ ८ ॥

फिर योगी ऐसी भावना करे, कि—उस मण्डपके बीचमें मनोहर पलँग बिछ रहा है, उस ही पलंग अपने अभीष्टदेव विराजमान हैं। गुरुदेवने जैसा २ अभीष्टदेवका ध्यान, रूप, भूषण, वाहन आदिका उपदेश दिया हो, योगी उस ही रूपका ध्यान करे, इसको ही स्थूलध्यान कहते हैं ॥ ७-८ ॥

प्रकारान्तर ३।

सहस्रारे महापद्मे कर्णिकायां विचिन्तयेत् ।
विलग्नसहितं पद्मं द्वादशैर्दलसंयुतम् ॥ ९ ॥

एक और प्रकारका स्थूलध्यान है,—ब्रह्मरन्ध्रमें सहस्रार नामक एक सहस्र दल वाला महापद्म विराज रहा है, इस कमलके मध्यमें और एक बारह दलवाला कमल विराज रहा है ॥ ९ ॥

शुक्लवर्णं महातेजो द्वादशैर्बीजभासितम् ।
हसक्षमलवरयुं हसखफ्रें यथाक्रमम् ॥ १० ॥

यह द्वादशदल कमल शुभ्र वर्ण वाला और परमतेजःसम्पन्न है। इस कमलके बारहों पत्तोंमें क्रमशः ह, स, क्ष, म, ल, व, र, यूं, ह स ख और फ्रें यह बारह अक्षर लिख रहे हैं ॥१०॥

तन्मध्ये कर्णिकायां तु अकथादिरेखात्रयम् ।
हलक्षकोणसंयुक्तं प्रणवं तत्र वर्तते ॥ ११ ॥

उस कमलकी कर्णिकामें अ, क, थ, इन तीन अक्षरोंकी तीन रेखा हैं उन रेखाओंके मध्यमें ह, ल, क्ष, इन त्रिकोणाकार अक्षरोंके मण्डलमें "ॐ" बना हुआ है ॥ ११ ॥

नादबिन्दुमयं पीठं ध्यायेत्तत्र मनोहरम् ।
तत्रोपरि हंसयुग्मं पादुका तत्र वर्तते ॥ १२ ॥

"फिर योगी ऐसा चिन्तवन करे कि—इस स्थान पर सुमनोहर नादबिन्दुमय एक पीठ विराजमान है, उस पीठ (सिंहासन) पर दो हंस खड़े हैं। और वहाँ ही पादुका भी रक्खी हैं ॥१२॥

ध्यायेत्तत्र गुरुं देवं द्विभुजं च त्रिलोचनम् ।
श्वेताम्बरधरं देवं शुक्लगंधानुलेपनम् ॥ १३ ॥
शुक्लपुष्पमयं माल्यं रक्तशक्तिसमन्वितम् ।
एवंविधगुरुध्यानात्स्थूलध्यानं प्रसिद्ध्यति ॥ १४ ॥

योगी ध्यान करे, कि—इस ही स्थल पर गुरुदेव विराजमान

हैं, उनके दो भुजा हैं, तीन नेत्र हैं और वे शुक्ल वस्त्र पहिर रहे हैं। उनके शरीर पर शुभ्र चन्दन लगा हुआ है, उनके गलेमें शुभ्रवर्णके प्रसिद्ध पुष्पोंकी माला पड़ी हुई है। उनके वामपार्श्व में रक्तवर्णा शक्ति शोभा देरही है। इसप्रकार गुरुका ध्यान करने पर स्थूलध्यान सिद्ध होता है * ॥ १२-१४ ॥

---

* विश्वसारतन्त्रमें लिखा है, कि—

"प्रातः शिरसि शुक्लेऽब्जे त्रिनेत्रं द्विभुजं गुरुम्।
वराभयकरं शान्तं स्मरेत्तन्नामपूर्वकम् ॥"

अर्थात्-मस्तकमें जो शुभ्रवर्णका कमल है, योगी प्रभातकालमें उस पद्ममें गुरुका ध्यान करे कि-वह शांत, त्रिनेत्र, द्विभुज हैं और उनके हाथोंमें वर और अभय हैं। इसप्रकारकी चिन्ताको स्थूलध्यान कहते हैं।

कंकालमालिनीतन्त्रमें लिखा है, कि-

"सहस्रदलपद्मस्थमन्तरात्मानमुज्ज्वलम् ।
तस्योपरि नादबिन्दोर्मध्ये सिंहासनोज्ज्वले ॥
तत्र निजगुरुं नित्यं रजताचलसंनिभम् ।
वीरासनसमासीनं सर्वाभरणभूषितम् ॥
शुक्लमाल्याम्बरधरं वरदाभयपाणिकम् ।
वामोरुशक्तिसहितं कारुण्येनावलोकितम् ॥
प्रियया सव्यहस्तेन धृतचारुकलेवरम् ।
वामेनोत्पलधारिण्या रक्ताभरणभूषया ॥
ज्ञानानन्दसमायुक्तं स्मरेत्तन्नामपूर्वकम् ।"

अर्थात्-योगी इसप्रकार ध्यान करे, कि-जिस सहस्रदलकमलमें प्रदीप्त अन्तरात्मा अधिष्ठित है, उसके ऊपर नादबिन्दुके मध्यमें एक उज्ज्वल सिंहासन विद्यमान है, उस ही सिंहासन पर अपने इष्टदेव विराज रहे हैं, वे वीरासनसे बैठे हुए हैं, उनका शरीर चाँदीके पर्वतकी समान श्वेत है वे नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हैं और सफेद माला तथा श्वेत वस्त्रोंको धारण कर रहे हैं, उनके हाथोंमें वर और अभय हैं, उनकी बाईं जाँघ पर शक्ति बैठी हुई हैं। गुरुदेव करुणादृष्टिसे चारों ओर देख रहे हैं, प्रियतमा शक्ति दाहिने हाथसे उनके मनोहर शरीरका स्पर्श कररही है। उन शक्तिके वामकर में रक्तपद्म है और वह रक्तवर्णके आभूषणोंसे भूषित हैं, इसप्रकार

ज्योतिर्ध्यानम् ।

घेरण्ड उवाच ।

कथितं स्थूलध्यानन्तु तेजोध्यानं शृणुष्व मे ।
यद्ध्यानेन योगसिद्धिरात्मप्रत्यक्षमेव च ॥
मूलाधारे कुण्डलिनी भुजगाकाररूपिणी ।
जीवात्मा तिष्ठति तत्र प्रदीपकलिकाकृतिः ॥
ध्यायेत्तेजोमयं ब्रह्म तेजोध्यानात्परात्परम् ॥१६॥

घेरण्डने कहा, कि-हे चण्ड ! स्थूल-ध्यानका वर्णन कर दिया, अब तेजोध्यान (ज्योतिर्ध्यान) को सुन । इस ध्यान से योगसिद्धि और आत्मप्रत्यक्षताशक्ति उत्पन्न होजाती है । मूलाधार अर्थात् गुह्यप्रदेश और लिंगमूलके मध्यगत स्थानमें कुण्डलिनी सर्पाकारमें विद्यमान है । इस स्थानमें जीवात्मा दीपशिखा की समान अवस्थित है । इस स्थानपर ज्योतीरूप ब्रह्मका ध्यान करे । इसको ही तेजोध्यान वा ज्योतिर्ध्यान कहते हैं॥१५-१६॥

भ्रुवोर्मध्ये मनोर्ध्वे च यत्तेजः प्रणवात्मकम् ।
ध्यायेज्ज्वालावलीयुक्तं तेजोध्यानं तदेव हि ॥१७॥

एक और प्रकारका तेजोध्यान है, कि भ्रूयुगलके मध्यमें और मनके ऊर्ध्वभागमें जो ॐकारमय और शिखामाला-समन्वित ज्योति विद्यमान है, उस ही ज्योतिका ध्यान करे । इसको ही ज्योतिर्ध्यान वा तेजोध्यान कहते हैं ॥ १७ ॥

सूक्ष्मध्यानम् ।

तेजोध्यानं श्रुतं चण्ड सूक्ष्मध्यानं वदाम्यहम् ।
बहुभाग्यवशाद्यस्य कुण्डली जागृता भवेत् ॥१८॥

उन ज्ञानसमायुक्त गुरुके नामस्मरणपूर्वक उनका ध्यान करे, इसको स्थूलध्यान कहते हैं ।

घेरण्ड कहने लगे, कि—चण्ड ! तुमने ज्योतिर्ध्यान सुना, अब मैं सूक्ष्मध्यानको कहता हूँ, सुनो ! बड़ेभारी प्रारब्ध (पुण्य) का उदय होने पर जिस साधककी कुण्डली जाग्रत होकर ।१८।

आत्मनः सहयोगेन नेत्ररंध्राद्विनिर्गता ।
विहरेद् राजमार्गे च चंचलत्वान्न दृश्यते ॥ १९ ॥

आत्माके साथ मिलकर नेत्ररंध्र मार्गसे निकल कर ऊर्ध्व-भागस्थ राजमार्ग नामक स्थलमें परिभ्रमण करती है । भ्रमण करते समय सूक्ष्मत्व और चञ्चलताके कारण ध्यानयोगमें कुंड-लिनीको देखना कठिन होता है ॥ १९ ॥

शांभवी मुद्रया योगी ध्यानयोगेन सिद्ध्यति ।
सूक्ष्मध्यानमिदं गोप्यं देवानामपि दुर्लभम् ॥२०॥

योगी शाम्भवी मुद्राका अनुष्ठान करता हुआ कुण्डलिनीका ध्यान करे, इसका ही नाम सूक्ष्मध्यान है । यह ध्यान अति गोप-नीय है और यह देवताओंको भी कठिनसे मिलता है ॥२०॥

स्थूलध्यानाच्छतगुणं तेजोध्यानं प्रचक्षते ।
तेजोध्यानाल्लक्षगुणं सूक्ष्मध्यानं विशिष्यते ॥२१॥

स्थूलध्यानसे ज्योतिर्ध्यान सौ गुणा श्रेष्ठ है और ज्योति-र्ध्यानसे सूक्ष्मध्यान लाखगुणा श्रेष्ठ है ॥ २१ ॥

इति ते कथितं चंड ध्यानयोगं सुदुर्लभम् ।
आत्मसाक्षाद्भवेद्यस्मात् तस्माद् ध्यानं विशिष्यते २२

घेरण्डने कहा, कि—हे चण्ड ! यह मैंने तुमसे दुर्लभ ध्यान-योग कहा । इसके द्वारा आत्मसाक्षात्कारका लाभ होता है और इससे ध्यानसिद्धि होजाती है ॥ २२ ॥

॥ षष्ठ उपदेश समाप्त ॥

———०———

❀ सप्तमोपदेशः ❀

समाधियोगः ।

घेरण्ड उवाच ।

समाधिश्च परं योगो बहुभाग्येन लभ्यते ।
गुरोः कृपाप्रसादेन प्राप्यते गुरुभक्तितः ॥ १ ॥

बड़े भारी सौभाग्यसे समाधि नामक परमयोगका लाभ होता है । गुरुदेवकी कृपा होने पर और उनकी प्रसन्नता प्राप्त करने पर और उनमें अचल भक्ति होनेसे यह योग प्राप्त होता है ॥१॥

विद्याप्रतीतिः स्वगुरुप्रतीति-
रात्मप्रतीतिर्मनसः प्रबोधः ।
दिने दिने यस्य भवेत्स योगी
सुशोभनाभ्यासमुपैति सद्यः ॥ २ ॥

दिन २ विद्या, गुरु और अपने ऊपर जिस योगीकी प्रतीति (विश्वास) बढ़ती है और दिन २ जिस योगीके मनमें ज्ञान होता है, वह ही समाधियोग साधनके अभ्यासका अधिकारी होता है ॥ २ ॥

घटाद्भिन्नं मनः कृत्वा ऐक्यं कुर्यात्परात्मनि ।
समाधिं तद्विजानीयान्मुक्तसंज्ञो दशादिभिः ॥३॥

शरीरसे मनको भिन्न करके परमात्माके साथ मिलावे । इस को ही समाधि कहते हैं । इसके द्वारा सब प्रकारकी अवस्थाओं से छूटकर मुक्त होजाता है ॥ ३ ॥

अहं ब्रह्म न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तः स्वभाववान् ४

जो योगी समाधिसाधन करता है उसको इस प्रकारका ज्ञान उत्पन्न होता है, कि मैं ब्रह्म हूँ, ब्रह्मसे पृथक् नहीं हूँ । मैं ब्रह्म

हूँ, मैं शोकरहित, नित्यमुक्त और स्वभाववान् (ब्रह्मप्रकृतिस्थ) हूँ, मैं सच्चिदानन्दस्वरूप (सत्यमय, ज्ञानमय और नित्यानन्दमय) हूँ। इस प्रकार ज्ञानसंचार होने पर उस योगीकी समाधिसिद्ध होगई ऐसा कहा जासकता है ॥ ४ ॥

शांभव्या चैव खेचर्या भ्रामर्या योनिमुद्रया ।
ध्यानं नादं रसानन्दं लयसिद्धिश्चतुर्विधा ॥ ५ ॥
पञ्चधा भक्तियोगेन मनोमूर्च्छा च षड्विधा ।
षड्विधोऽयं राजयोगः प्रत्येकमवधारयेत् ॥ ६ ॥

समाधियोग छः प्रकारका है-ध्यानयोगसमाधि, नादयोगसमाधि, रसानन्दयोगसमाधि, लयसिद्धियोगसमाधि, भक्तियोगसमाधि और राजयोगसमाधि। शाम्भवीमुद्राके अवलम्बन पूर्वक ध्यानयोगसमाधि,खेचरीमुद्राके अवलम्बनपूर्वक नादयोगसमाधि, भ्रामरीनामक कुम्भकके अवलम्बनपूर्वक रसानन्दयोगसमाधि, योनिमुद्राके अवलम्बनसे लयसिद्धियोगसमाधि, भक्तिका अवलम्बन करतेहुए भक्तियोगसमाधि और मनोमूर्छानामक कुम्भकका अनुष्ठान करतेहुए राजयोग समाधिका आचरण करे।

ध्यानयोगसमाधिः ।

शाम्भवीं मुद्रिकां कृत्वा आत्मप्रत्यक्षमानयेत् ।
बिंदुब्रह्म सकृद् दृष्ट्वा मनस्तत्र नियोजयेत् ॥ ७ ॥

पहिले शाम्भवी मुद्राका अनुष्ठान करके आत्मप्रत्यक्ष करे, फिर विन्दुमय ब्रह्मका दर्शन करता हुआ उस विन्दुस्थलमें मनको लगावे ॥ ७ ॥

खमध्ये कुरु चात्मानं आत्ममध्ये च खं कुरु।
आत्मानं खमयं दृष्ट्वा न किंचिदपि बाध्यते ॥
सदानन्दमयो भूत्वा समाधिस्थो भवेन्नरः ॥ ८ ॥

फिर शिरमें स्थित ब्रह्मलोकमय आकाशके मध्यमें आत्माको

ले आवे, फिर शिरमें स्थित ब्रह्मलोकमय आकाशको जीवात्मा में ले आवे (लीन करे) इस प्रकार जीवात्माको परमात्मामें लीन करके नित्यानन्दमय और मुक्त होजाय, इसको ही ध्यान योगसमाधि कहते हैं ॥ ८ ॥

नादयोगसमाधिः ।

साधनात्खेचरीमुद्रा रसनोर्ध्वंगता सदा ।
तदा समाधिसिद्धिः स्याद्धित्वा साधारणक्रियाम् ९

खेचरीमुद्राका अनुष्ठान कर रसनाको ऊपरको करके रक्खे, इसके द्वारा साधारण क्रियाएँ छूट कर समाधिसिद्धि होजाती है । इसको ही नादयोगसमाधि कहते हैं ॥ ९ ॥

रसानन्दयोगसमाधिः ।

अनिलं मन्दवेगेन भ्रामरीकुम्भकं चरेत् ।
मन्दं मन्दं रेचयेद्वायुं भृंगनादं ततो भवेत् ॥ १० ॥

भ्रामरी नामक कुम्भकको करके धीरे २ श्वासवायुको निकाल दे, इस योगको साधते समय देहके भीतर भौंरेकी गुंजारकी समान शब्द सुनाई देता है ॥ १० ॥

अन्तःस्थं भ्रामरीनादं श्रुत्वा तत्र मनो नयेत् ।
समाधिर्जायते तत्र आनन्दः सोहमित्युत ॥ ११ ॥

शरीरके भीतर जहाँ पर यह नाद होता है मनको उस ही स्थान पर लगादे, इसको ही रसानन्दयोगसमाधि कहते हैं । इस योगके द्वारा "सोहम्" (मैं ही ब्रह्म हूँ) यह ज्ञान होता है और योगी सदा परम आनन्दका उपभोग करता है ॥ ११ ॥

लयसिद्धियोगसमाधिः ।

योनिमुद्रां समासाद्य स्वयं शक्तिमयो भवेत् ।
सुश्रृङ्गाररसेनैव विहरेत्परमात्मनि ॥ १२ ॥
आनन्दमयः संभूत्वा ऐक्यं ब्रह्मणि संभवेत् ।
अहं ब्रह्मेति चाद्वैतं समाधिस्तेन जायते ॥ १३ ॥

योगी पहिले योनिमुद्राका अनुष्ठान करता हुआ अपनेमें शक्तिरूपकी भावना करे, अर्थात् अपनेमें स्त्री और परमात्मामें पुरुषस्वरूपकी भावना करे। फिर मन ही मनमें इस प्रकार भावना करे, कि पुरुषस्वरूप परमात्माके साथ स्त्रीरूप मेरा शृङ्गाररससे भरा हुआ विहार होरहा है "उक्त विहारसे जो परम आनन्दरस उत्पन्न हुआ है, मैं उस रसमें निमग्न हो परब्रह्मसे अभिन्नरूप वाले प्रणवमें मिलगया हूँ" इस योगके द्वारा "मैं ब्रह्म और अद्वितीय हूँ" ऐसे ज्ञानका संचार होना है। इस समाधिको ही लयसिद्धियोग कहते हैं ॥ १२-१३ ॥

भक्तियोगसमाधिः।

स्वकीयहृदये ध्यायेदिष्टदेवस्वरूपकम्।
चिन्तयेद्भक्तियोगेन परमाह्लादपूर्वकम् ॥ १४ ॥
आनन्दाश्रुपुलकेन दशाभावः प्रजायते।
समाधिः संभवेत्तेन सम्भवेच्च मनोन्मनिः ॥१५॥

अचल भक्ति और परम आल्हादके साथ अपने हृदयके भीतर इष्टदेवका चिन्तवन करे। इसके द्वारा आनन्दाश्रु बहने लगते हैं, शरीर पुलकित होजाता है, एवं मन अचेत होजाता है और एकाग्र होजाता है अर्थात् परब्रह्मका साक्षात्कार होजाता है इसको ही भक्तियोगसमाधि कहते हैं ॥ १४-१५ ॥

राजयोगसमाधिः।

मनोमूर्छां समासाद्य मन आत्मनि योजयेत्।
परात्मनः समायोगात् समाधिं समवाप्नुयात् ॥१६॥

मनोमूर्छा नामक कुम्भकका अभ्यास करता हुआ मनको परमात्मामें एकाग्र करे। इसप्रकार परमात्माके संयोगसे समाधि सिद्धि होजाती है इसको ही राजयोगसमाधि कहते हैं ॥ १६ ॥

समाधियोगमाहात्म्यम्।

इति ते कथितं चण्ड समाधिं मुक्तिलक्षणम्।

राजयोगः समाधिः स्यादेकात्मन्येव साधनम् ।
उन्मनी सहजावस्था सर्वे चैकात्मवाचकाः ॥ १७ ॥

हे चण्डकापाले ! इस प्रकार मैंने तुमसे मुक्तिरूप समाधि-योगका कीर्त्तन किया केवल राजयोग, समाधि, उन्मनी अथवा सहजावस्थाका नाम योग नहीं है, किन्तु जब ये आत्मामें मनको एकाग्र करके किये जाते हैं तब ही सिद्ध होते हैं और योग कहलाते हैं ॥ १७ ॥

जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके ।
ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् १८

जलमें विष्णु हैं स्थलमें विष्णु हैं, पर्वतकी चोटियों पर विष्णु हैं, ज्योतिर्मयमें विष्णु हैं, अधिक क्या यह सम्पूर्ण जगत् ही विष्णुमय है

भूचराः खेचराश्चामी यावन्तो जीवजन्तवः ।
वृक्षगुल्मलतावल्लीतृणाद्या वारिपर्वताः ॥
सर्वं ब्रह्म विजानीयात् सर्वं पश्यति चात्मनि ॥१९॥

भूचर, खेचर आदि जितने भी जीव-जन्तु, वृक्ष, वेल, लता, वल्ली, तृण, जल और पर्वत ये सब ही ब्रह्मस्वरूप हैं जो योगी होता है वह इस प्रकार आत्मामें समस्त पदार्थोंको देखता है ॥

आत्मा घटस्थचैतन्यमद्वैतं शाश्वतं पदम् ।
घटाद्भिन्नतो ज्ञात्वा वीतरागो विवासनः ॥२०॥

जीवात्मा परमात्माकी छायारूप है परमात्मा अद्वितीय, शाश्वत और सर्वप्रधान है । मनुष्यादि के पार्थिव शरीरमें जीवात्मा-रूपी परमात्माका अंश आवद्ध होकर केवल शरीरस्थ चैतन्य-रूपसे ही स्थित है । परन्तु शरीरबन्धनसे मुक्त होने (मानने) पर वीतराग और वासनाशून्य हो फिर उस ब्रह्ममें सम्मि-लित होजाता है ॥ २० ॥

एवं विधिः समाधिः स्यात्सर्वसंकल्पवर्जितः।
स्वदेहे पुत्रदारादिबान्धवेषु धनादिषु ॥
सर्वेषु निर्ममो भूत्वा समाधिं समवाप्नुयात् ॥२१॥

इसप्रकार सर्वसंकल्परहित होकर समाधिका साधन करना उचित है। अपना देह, पुत्र, भार्या, बान्धव, धन; इन सकल विषयोंमें ममताहीन होकर समाधिका साधन करे ॥ २१ ॥

तत्त्वं लयामृतं गोप्यं शिवोक्तं विविधानि च।
तेषां संक्षेपमादाय कथितं मुक्तिलक्षणम् ॥ २२ ॥

देवदेव महादेवने लयामृत आदि बहुतसे गोपनीय तत्त्व कहे हैं। उनमेंसे मैंने चुनकर संक्षेपके साथ तुमसे जो बातें कहीं वे मुक्तिस्वरूप हैं ॥ २२ ॥

इति ते कथितं चंड समाधिर्दुर्लभः परः।
यज्ज्ञात्वा न पुनर्जन्म जायते भूमिमंडले ॥ २३ ॥

हे चण्ड ! मैंने तुमसे परमदुर्लभ समाधियोगका वर्णन किया इस योगको जान जाने पर मनुष्यको इस भूलोकमें फिर जन्म नहीं लेना पड़ता है ॥ २३ ॥

॥ सप्तम उपदेश समाप्त ॥

घेरण्डसंहिता समाप्त.